सुशीला

बहुत दिनो के पश्चात् सुशीला के साथ फिर मेरा साक्षात् हुआ था—अकस्मात् और अचिन्तनीय रूप से।

मुझे याद है—बहुत दिन पहले वह हमारे मकान के बगल मे रहती थी। तब वह एक छोटी बच्ची थी—उसका हृदय कॉच की तरह स्वच्छ था—उस समय उसके हृदय मे कोई विकार की रेखा नही खिच सकती थी, मगर मै किशोर अवस्था मे था, इसलिये मेरे हृदय मे रेखा खिंच गई थी।

उस समय मै चोरी से उपन्यास पढ़ता था और उपन्यास के ढग की कल्पनाओं से मेरा मन भरा रहता था।

सुशीला मुझे अच्छी लगती थी। उसका चेहरा बहुत सुन्दर था—आखे बड़ी-बड़ी। कभी-कभी वह मेरे कमरे मे आकर शरारत करती थी—मैं तग आ जाता था; फिर भी मै उसे पसन्द करता था। वह अगर एक दिन नहीं आती—एक दिन शरारत नहीं करती, तो मुझे ऐसा लगता था, मानो वह बहुत दिनों से नहीं आई है।

छिपे-छिपे मैं उससे बहुत प्रेम करने लगा था। यह बात किसी को मालूम नही थी। बारह साल की उम्र की सुशीला भी नहीं जानती थी, क्योंकि उस समय वह प्रेम का मतलब नही समझती थी। मुझे याद है, एक दिन वह मेरा कीमती फाउनटेन-पेन तोड कर चुपके से ठीक स्थान पर रखकर भाग रही थी, और ठीक उसी समय मैं कमरे में पहुँच गया था। वह मारे डर के कॉप रही थी। उसे सजा देने की इच्छा से मैंने उसके दोनों हाथ पकडे, मगर उसके चेहरे पर मेरी आँखें पड़ते ही सजा देने की इच्छा गायब हो गई। उसके दोनों हाथ छोड़ देने पर वह

दरवाजे के पास खड़ी होकर सुशीला बोली—"आओ रमेश भैय्या—अपने पति से तुम्हारा परिचय करा दूँ। वे तुम्हे देखकर बहुत खुश होंगे।"

सुशीला का पति! मेरे हृदय के अन्दर कँप-कँपी होने लगी—सिर में चक्कर आने लगा। सुशीला के पति मुझे देखकर खुश होंगे—मगर इससे मेरा क्या फायदा है?

मैंने कहा—"फिर किसी दिन आ जाऊँगा।"

मै लौटा आ रहा था। एक बार पीछे मुड़ कर देखा—टेनिसन मेरी ओर ताक कर कुछ कह रहा था, और उसकी माँ उसकी बातों का जवाब दे रही थी।

मैं शायद ही कभी चौक मे जाता था, मगर आजकल प्रतिदिन जाने लगा था और कुछ न कुछ खरीद लाता था। मगर सुशीला या टेनिसन से एक दिन भी मुलाकात नही हुई।

चुम्बक जैसे लोहे को खींचता है, उसी तरह सुशीला मुझे खींचने लगी। आखिर एक दिन मैं उसके मकान पर जा पहुँचा।

गन्दा और नमीदार मकान था, फिर भी सुशीला ने निपुणता के साथ सब असबाब सजाकर उसे सुन्दर बना दिया था।

मैंने देखा, सुशीला के पति राजकुमार को तपेदिक हो गया है। उसका शरीर दुबला था, नाक अस्वाभाविक रूप से लम्बी मालूम हो रही थी, गाल का मास गायब होकर हड्डियाँ दीख रही थीं। उसकी दो बड़ी आँखे उज्ज्वल थीं, और चेहरे पर मुस्कराहट थी।

उसके साथ मेरा परिचय बहुत जल्द हो गया क्योंकि उसे साहित्य से बहुत प्रेम था। रोग-शय्या पर वह साहित्य के ही आधार पर दिन काट रहा था।

मै लिखता हूँ, मेरी रचना वह पढता है, और मुझको देखने के पहले ही से वह मुझ पर श्रद्धा कर रहा है, यह सुन कर उसे मैं करुणा की दृष्टि से देखने लगा।

मैंने देखा वह अच्छी तरह से दिन काट रही है, हँस रही है, र
कर रही है।

मैंने कहा—"यह नाम रखने का अर्थ मैंने नहीं समझ
सुशीला "

सुशीला हँसी रोकती हुई बोली—"मेरे लड़के को कविता से ब
प्रेम है। अभी से कह रहा है कि कविता बनायेगा। टेनिसन की
कविताओं को पढ़ने की कोशिश करता है, मगर जबान से निकलती
नहीं। इसीलिये मैंने नाम रक्खा है 'टेनिसन सक्सेना'। अभी तक
कोई दूसरा नाम नहीं रक्खा है।"

वह इतना हँसने लगी कि मुझे भी हँसना पड़ा।

टेनिसन से बहुत शीघ्र मेरी दोस्ती हो गई। दुनिया में कितने
बच्चे देखे, मगर सबसे ज्यादा इसीसे मेरा प्रेम हो गया, क्योंकि
सुशीला का लड़का था।

सुशीला फल खरीदने के लिये इक्के पर आई थी। घर ल
लगी।

मैंने पूछा—"कहाँ रहती हो?"

सुशीला बोली—"ज्यादा दूर नहीं है ..पास ही रहती हूँ।"

मैं उसके इक्के पर बैठते हुए बोला—"चलो...तुम्हारा म
देख लूँ"

विकट गेट पर सुशीला ने इक्का छोड़ दिया और बादशाही मंडी
एक गन्दी गली में जाने लगी। उस गली में कुछ दूर पर एक छो
मकान दिखाकर सुशीला बोली—"यह मकान है।"

"यह मकान?" विस्मय से दोनों आँखें उठाकर मैंने उसी ओ
देखा।

कितना खराब और गन्दा मकान था!. .मकान के सामने ग
था। इसी मकान में सुशीला रहती है, यह देखकर मेरा हृदय दु
से भर आया। मैंने सोचा, सुशीला यहाँ कैसे रहती है?

दरवाजे के पास खड़ी होकर सुशीला बोली—"आओ रमेश भैय्या—अपने पति से तुम्हारा परिचय करा दूँ। वे तुम्हें देखकर बहुत खुश होंगे।"

सुशीला का पति! मेरे हृदय के अन्दर कँप-कँपी होने लगी—सिर में चक्कर आने लगा। सुशीला के पति मुझे देखकर खुश होंगे—मगर इससे मेरा क्या फायदा है?

मैंने कहा—"फिर किसी दिन आ जाऊँगा।"

मैं लौटा आ रहा था। एक बार पीछे मुड़ कर देखा—टेनिसन मेरी ओर ताक कर कुछ कह रहा था, और उसकी माँ उसकी बातों का जवाब दे रही थी।

मैं शायद ही कभी चौक में जाता था, मगर आजकल प्रतिदिन जाने लगा था और कुछ न कुछ खरीद लाता था। मगर सुशीला या टेनिसन से एक दिन भी मुलाकात नहीं हुई।

चुम्बक जैसे लोहे को खींचता है, उसी तरह सुशीला मुझे खींचने लगी। आखिर एक दिन मैं उसके मकान पर जा पहुँचा।

गन्दा और नमीदार मकान था, फिर भी सुशीला ने निपुणता के साथ सब असबाब सजाकर उसे सुन्दर बना दिया था।

मैंने देखा, सुशीला के पति राजकुमार को तपेदिक हो गया है। उसका शरीर दुबला था, नाक अस्वाभाविक रूप से लम्बी मालूम हो रही थी, गाल का मांस गायब होकर हड्डियाँ दीख रही थीं। उसकी दो बड़ी आँखें उज्ज्वल थीं, और चेहरे पर मुस्कराहट थी।

उसके साथ मेरा परिचय बहुत जल्द हो गया क्योंकि उसे साहित्य से बहुत प्रेम था। रोग-शय्या पर वह साहित्य के ही आधार पर दिन काट रहा था।

मैं लिखता हूँ, मेरी रचना वह पढ़ता है, और मुझसे देखने के पहले ही से वह मुझ पर श्रद्धा कर रहा है, यह सुन कर उसे मैं करुणा की दृष्टि से देखने लगा।

सुशीला की रचनायें मै अपनी इच्छानुसार पत्र-पत्रिकाओं में भेजता था, किसीको पता लगने नही दिया था कि सुशीला इतना करीब रहती है—वे चाहते तो उसके पास से रचनायें ले सकते थे।

मैं स्वार्थी था—इसीलिये कोई सुशीला से मिलना चाहेगा, यह बात कल्पना मे भी असहनीय थी। सुशीला को मैं छिपाकर रखना चाहता था जिससे कोई उसके पास पहुँच न सके।

सम्पादक का पत्र पाते ही मैंने सुशीला को पत्र लिखा, मगर कोई जवाब नहीं आया। मेरे हृदय मे कुछ घबराहट होने लगी। मै उसे कई बार पत्र लिखने के लिये कहकर आया था, उसने पत्र क्यों नहीं लिखा?

मैंने तीन चार पत्र सुशीला को लिखे कि मुझे जवाब दे या न दे—सम्पादक के पास रचनायें अवश्य भेज दे, नहीं तो मुझे झूठा बनना पड़ेगा।

छुट्टी खतम होते ही इलाहाबाद लौट आया। पहले सम्पादक से मुलाकात हुआ। मैंने पूछा—"क्यों साहब, रचनायें मिलीं?" वे निराशा के स्वर में बोले—"नहीं जनाब! सुशीला देवीजी ने कोई रचना अभी तक नहीं भेजी है। उनका पता अगर लिखते तो चेष्टा हो सकता, मैं [illegible]।"

सुशीला पर मैं नाराज हो गया था। जान बूझकर उसने मुझे बेइज्जत किया। मैं उदास मकान की ओर चल पड़ा।

[illegible] मकान था। दरवाजा [illegible] हुआ था। मैं खोलकर अन्दर गया। [illegible] सुनसान थे। माल असबाब जहाँ का तहाँ [illegible] और [illegible] चिह्न नहीं थे।

मैं [illegible] — [illegible]?

वह कहीं नहीं गई होगी, क्योंकि दरवाजा खुला था और मैं यह अच्छी तरह से जानता था कि सुशीला आजकल बाहर नहीं निकलती थी और न किसीसे मिलती-जुलती थी, नहीं तो कवि सुशीला देवी पर, सब पत्रिकाओं के सम्पादक अधिकार कर लेते।

मैंने पुकारा—"टेनिसन !"

जवाब नहीं मिला।

"सुशीला !"

कोई जवाब नहीं।

तीनों कमरों के पिछवाडे थोड़ा-सा आँगन था, वहाँ सुशीला ने अपने हाथों से कई फूल के पौधे लगाये थे। उसी तरफ से एक शब्द सुनकर मैं उसी ओर बढा।

सुशीला मुँह छिपाये जमीन पर पड़ी हुई थी।

देखा, एक भी पौधा वहाँ नहीं है—घास तक उखड़ी हुई थी।

मैंने पुकारा—"सुशीला !"

सुशीला ने मुँह ऊपर उठाया। उसकी आँखों में आँसू भरे हुये थे। अंचल से आँखे पोंछ कर वह उठकर बैठ गई। उसके हृदय पर काली जिल्द की एक कॉपी थी।

वह बिलकुल बदल गई थी। एक महीना पहले जिसे मैं देख गया था, क्या यह वही सुशीला है ? मैं चकित होकर सोचने लगा कि कैसे इस तरह का परिवर्त्तन हो गया ?

वह बहुत क्षीण स्वर से बोली—"बैठो, रमेश भैया."

मैंने चकित होकर कहा—"यहीं ?"

उँगली से इशारा करके वह बोली—"वहाँ बैठो।"

मैं बैठा नहीं। बोला—"कमरे में चलो।"

उसने अपने आँसू रोकते हुये कहा—"कमरे में ! मैं अब कमरे में नहीं रहती हूँ रमेश भैया—मैं यहीं रहती हूँ।"

"यहीं रहती हो ! और टेनिसन ?"

वह अपनी दृष्टि मेरे चेहरे पर फेंक कर बोली—"उसे हृदय में जकड़ कर मैं यहाँ पड़ी हूँ रमेश भैया! मेरा लाल सो गया है—उसे जलाकर राख नहीं कर सकी—यहीं जमीन के अन्दर लिटा दिया है। मैं उस पर छाती रखकर पड़ी हूँ रमेश भैया...माँ के हृदय में न रहने पर उसे डर लगेगा!"

मैं उसकी ओर एकटक ताकता रहा—एक शब्द भी मेरी जबान से नहीं निकला।

"वह पुकार रहा है, रमेश भैया,—वह पुकार रहा है—अम्माँ! नहीं, तुम नहीं सुन पाओगे, क्योंकि तुम उसे चाहते नहीं थे! कविताओं की इस कापी से उसे बहुत प्रेम था—मैं इसे उसके पास रखना चाहती थी मगर नहीं रख सकी। रमेश भैया, मेरा सब समाप्त हो गया है। जब मेरे पास मेरे तब मेरे सामने था टेनिसन, उसे घेर कर मेरी कल्पना दौड़ रही थी, आज मैं किसके आधार पर लिखूँ—मेरी कल्पना का झरना सूख गया है!"

कापी को हृदय से चिपटा कर वह फिर जमीन पर लेट गई।

मैंने देखा, सुशीला अब पत्नी नहीं थी, वह सिर्फ जननी थी! हाय, सन्तान-हीना नारी!

हृदय में श्रद्धा, माता के प्रति भक्ति के भाव जग उठे।

इसके बाद, जब मैं उस मकान से निकला, तो मेरे हृदय में पवित्र भाव विराजमान था—स्वार्थ का नाम निशान तक नहीं था। सुशीला का दर्शन मैं तब देख रहा था—उसमें मैं अपने भोग और कामना की चीज नहीं समझ रहा था। जिसे मैं सबकी दृष्टि के बाहर रखना चाहता था, और उसे [illegible] मन के बीच में लाने की जबरदस्त इच्छा [illegible] थी, क्योंकि आज मैं उसका कोई नहीं था—वह सन्तान हीन माता थी। सुशीला मैं [illegible] किसी टेनिसन समझकर गोद में ले गई, [illegible] भी अपना दुख भूल गई—आज ने मेरा यही लक्ष्य [illegible]।

राजकुमारी मालविका

चाँदनी के बीच सम्राट् अशोक उद्यान में टहल रहे थे। उनके साथ तीन-चार समवयस्क थे। वृक्षों में रात्रि की वायु मर्मर ध्वनि कर रही थी और विभिन्न फूलों की गध चारों ओर व्याप्त थी। सम्राट् अल्प-भाषी थे, किन्तु साथीगण चपल थे, उनकी बोली बन्द न थी।

अशोक आहिस्ता-आहिस्ता कभी वृक्ष की छाया के नीचे, तो कभी चन्द्रकिरण से खिले दूर्वादल पर टहल रहे थे। झील के जल मे वृक्षों की छायायें कांप रही थीं; समीर से सम्राट् के घुँघराले केश और उत्तरीय चचल हो रहे थे। आकाश नीला और निर्मल था पृथ्वी चन्द्रालोक से उज्ज्वल थी।

पद्मनाभ ने कहा—"प्रयाग मे महाराज का नया कीर्त्ति-शिला-स्तभ निर्मित हो रहा है।"

धर्मपाल बोले—"यह तक्षशिला का समकक्ष होगा!"

चन्द्रचूड ने कहा—"इन्द्रप्रस्थ का स्तभ श्रेष्ठ है। पाडवों की कीर्त्तियां महाभारत मे हैं, महाराज की कीर्त्तियां सब लोगों की दृष्टि के सामने मस्तक ऊँचा किये खड़ी हैं, युग-युग मे लोग इन कीर्त्ति-स्तभों को देख कर विस्मित और चमत्कृत होंगे। पाटलीपुत्र से तक्षशिला, उज्जैन से द्वारिका, अग, वग, कलिग सर्वत्र महाराज की अक्षय कीर्त्तियाँ हैं। सम्राट् अशोक सारे जगत् का अधीश्वर है—इतिहास और पुराण मे उनका समकक्ष कौन है?"

सम्राट् ने आकाश की ओर देखा। प्रशान्त चौड़ा ललाट था, विशाल आँखों में गहरी अन्तर्दृष्टि थी। उन्होंने स्निग्ध, गभीर तथा

धीमे स्वर से कहा—"पत्थर में खोदी हुई यश की कहानियाँ क्या अक्षय कीर्त्ति हैं?"

खुशामदी साथी चुप रहे।

सम्राट् कहने लगे—"जो कीर्त्तियाँ मानव-हृदय पर अंकित रहती हैं, जो कीर्त्तियाँ लोगों की परम्परा से जुबानों पर रहती हैं, वे ही अक्षय कीर्त्तियाँ हैं। मैं अब तक अपने नाम की सार्थकता सम्पन्न नहीं कर सका हूँ।"

अल्पबुद्धि वयस्यगण कुछ भी नहीं समझ सके। धर्मपाल ने साहस के साथ कहा—"आपके नाम की सार्थकता? महाराज का नाम सर्वत्र गीत हो रहा है, महाराज की जय-पताका सब देशों में उड़ रही है, कितने राजे-महाराजे आपके पदानत हैं, महाराज के नाम से शत्रुओं का हृत्कम्प होता है। आपके नाम की सार्थकता नहीं हुई है?"

चिन्ता भरे स्वर में, मानो सम्राट् ने अपने आपसे कहा—'मेरा नाम अशोक है। माता-पिता ने मेरा यह नाम क्यों रक्खा था? यह सोच कर कि मैं केवल अपना राज्य विस्तार करूँगा? माता-पिता का शोक दूर करूँगा, इसलिये? अशोक वृक्ष का नाम सार्थक है, क्योंकि शोकार्त्त सीता अशोक वन में जाकर शोकशून्य हुई थीं। क्या मैं अशोक हूँ, शोकशून्य हूँ? क्या मैंने किसीका शोक दूर किया है? मैंने कितने ही लोगों को शोक में निमग्न किया है, स्वतन्त्र राजाओं को करद किया है, दूसरे की सम्पत्ति बलपूर्वक छीन ली है। कैसे मेरे नाम की सार्थकता हुई? क्या मैं अशोक हूँ?'

सब चुप थे। एक बादल के टुकड़े ने आकर चन्द्र को ढँक लिया। अशोक ने धीरे धीरे प्रासाद में प्रवेश किया।

(२)

सम्राट् अपने एकान्त कक्ष में जा पहुँचे। वयस्यगण प्रमोद-आलाप न करे।

सुसज्जित प्रमोद-प्रकोष्ठ प्रकाश से उज्जवल था। स्वर्ण-दीप के सुगंधित तेल से कमरा आलोकित तथा आमोदित था। कहीं सुगंधित फूलों की ढेरी थी, कहीं सुन्दर मालायें। एक ओर नाना प्रकार के वाद्यों का मधुर राग उठ रहा था, और उसके सामने नर्त्तकी नूपुरों का शब्द करके नाच रही थी। बीच-बीच में कोमल स्त्री-कंठ का मीठा गान हो रहा था।

प्रमोद-गृह में सम्राट् अपनी इच्छानुसार कभी आते थे, कभी नहीं आते थे। आज वे नहीं आये।

प्रासाद के एक निर्जन कक्ष में अपनी हथेली पर कपोल रख कर सम्राट् चिन्ता कर रहे थे। कुछ क्षणों तक सोचने के पश्चात् वे उठ खड़े और अपना राजवेश त्याग करके साधारण नागरिक का वेश ले लिया। फिर अपने हाथ से प्रकाश बुझा कर गुप्त भाव से प्रासाद से निकल गये।

चन्द्रमा अस्तमान हो गया था। अशोक राजपथ त्याग करके एक सँकरी गली में प्रवेश कर रहे थे, कि नगर-प्रहरी ने पुकारा—"कौन जाता है ?"

सम्राट् ने कहा—"नागरिक।"

"कहो, महाराज अशोक की जय !"

वैसा कहकर सम्राट् ने गली में प्रवेश किया। गली में बहुत धीमा प्रकाश था, अंधकार में अशोक सावधानी से चलने लगे।

कुछ दूर जाकर उन्होंने एक टूटा-फूटा छोटा-सा घर देखा, उसका द्वार आधा खुला था, भीतर दिये का हलका प्रकाश था। सम्राट् ने आहिस्ता से द्वार खटखटाया। भीतर से किसीने कहा—"द्वार खुला है, भीतर चले आओ।"

अशोक ने भीतर प्रवेश करके देखा कि एक फटी-मैली कथरी पर एक बुढ़िया बैठी है। बूढ़ी ने कहा—"क्या तुम चोर हो ? पर इस कुटिया में चोरी करने लायक कोई चीज नहीं है।"

सम्राट् ने कहा—"मैं चोर नहीं हूँ। मैं एक धनी नागरिक हूँ, किसीका कोई अभाव होने पर मैं पूरा करने का प्रयत्न करता हूँ।"

वृद्धा की आँखों में आँसू भर आये। उसने कहा—"पर मेरा अभाव कौन पूरा कर सकेगा!"

अशोक ने कहा—"अगर मेरे साध्य के बाहर हो, तो सम्राट् अशोक को जताऊँगा।"

वृद्धा की आँखों से अश्रुधारा बहती गई, बोली—"क्या सम्राट अशोक से आपकी जान-पहिचान है?"

"हाँ।"

"क्या वे मेरा अभाव दूर करेंगे?"

"उनकी क्षमता असीम है, उनके निकट अतुल धन-सम्पदा है, वे चाहें तो क्या नहीं कर सकते हैं!"

"क्या वे दयालु हैं?"

"लोग तो ऐसा ही कहते हैं।"

"वे अशोक हैं, उनको कोई शोक-दुख नहीं है। क्या वे दूसरों का दुख दूर करते हैं?"

"वे स्वयं शोकशून्य नहीं हैं, पर उनकी गहरी इच्छा है कि दूसरों का शोक दूर करें। वे कभी-कभी पश्चात्ताप में आकुल और विह्वल होते हैं।"

"किसके लिये पश्चात्ताप?"

"राज्य और प्रताप फैलाने के लिये। यह साम्राज्य तो [illegible] है, सारे जगत् का आधिपत्य होने पर भी क्या लाभ है? सम्राट् के चारों ओर खुशामदी हैं, सलाहकार कोई भी नहीं है। सभी स्वार्थी हैं, निःस्वार्थ भी कोई नहीं है। अनेक साथी हैं, पर मित्र कोई नहीं। [illegible] तृष्णा है, किसी प्रकार भी निवृत्ति नहीं है।"

वृद्धा ने हाथ सम्राट् के सिर पर उठाया। पूछा, "तुम कौन हो?"

सम्राट् ने सिर झुका लिया, बोले—"मैं अशोक हूँ।"

विस्मय या सम्भ्रम से वृद्धा अभिभूत नहीं हुई। उसने दीप रख
या। उसके आँसू सूख गये और उसकी आँखे आग की भाँति जलने
गीं। अपना मुट्ठीबन्द दाहिना हाथ सम्राट् के चेहरे पर उठाकर वृद्धा
ागल की तरह कहने लगी, "तुम अशोक—सम्राट्—तुमने रात को
चोर की तरह इस टूटी कुटिया मे, इस बुढ़िया अनाथ भिखारिन के
घर मे प्रवेश किया है? यह बात सुनने पर लोग हँसेगे। मैं जानती
हूँ कि तुम्हारी बात सच है। तुम्ही जगत् प्रसिद्ध सम्राट् अशोक हो!
तुम्हे इस समय अपने प्रमोद-कक्ष मे चैन से बैठकर सुन्दर युवतियों का
नृत्य देखना चाहिये था, पर ऐसा नहीं करके तुमने गहरी रात्रि में
चोर की तरह इस सूनी प्राचीन कुटिया मे प्रवेश किया है। क्यों महा-
राज, क्या तुम्हे मालूम नहीं कि हत्याकारी हत्या के स्थान पर पुनः
पुन. आता है, उसके हृदय का पाप उसे आकर्षण करके लाता है?
तुम अशोक, तुम अपने नाम की सार्थकता पूर्ण करने के लिये इतनी
रात मे ऐसी जगह आये हो? तुम दयालु हो, तुम मुझे धन देकर मेरा
दुख और गरीबी दूर करोगे? महाराज, चोर तो तुच्छ वस्तुओ की
ोरी करता है, तुमने जो मेरे जीवन-सर्वस्व की चोरी की है! मैं गरीब
ेधवा, मेरे केवल दो पुत्र थे; कितने यत्न - र कष्ट से उनका
पालन किया था। वे जो मेरी आँखो की पुतली थे, मेरी आशाओं के
अवलम्बन थे, मेरे बुढ़ापे का एकमात्र भरोसा थे। सौन्दर्य, गुण,
ल और विनय में राजकुमार भी उनके समकक्ष नहीं। वे कहाँ हैं,
महाराज? तुम्हारे यमदूत लोग दोनों भाइयों को पकड़ ले गये—तुम्हारे
सैनिक होकर वे युद्ध करेंगे। तुम्हारी विजय हुई, और एक राज में
तुम्हारी विजय-पताका फहराने लग गई। पर मेरे वे दो पुत्र कहाँ हैं,
महाराज? युद्ध के मैदान में भेड़िये और गिद्धों ने उनका मांस खाया
है! तुम मेरा अभाव दूर करोगे, मेरे उन दोनों पुत्रों को वापस करोगे?
तुम अशोक हो?"

सम्राट् अशोक अवनत मस्तक से, बिना कुछ बोले, कुटीर चले गये।

(२)

छोटा कक्ष था, कहीं भी कोई असबाब नहीं था। भूमि पर घास के आसन पर सम्राट् अशोक बैठे हुये थे। वे चिन्ता-मग्न थे।

द्वारपाल ने आकर हाथ जोड़कर कहा, "महाराज, द्वार पर सेनापति खड़े हैं।"

सम्राट् बोले, "द्वार मुक्त है। उनको आने को कहो।"

सेनापति ने आकर दोनों हाथ उठाकर अभिवादन करके [illegible] "जय, जय महाराज!"

सम्राट बोले, "तुम्हारा मंगल हो! कोई खबर है?"

"महाराज, कलिंग की राजकुमारी आ रही हैं। उन्होंने दूत [illegible] संदेश भेजा है कि आज सन्ध्या के समय नगर में आ पहुँचेंगी।"

"कलिंग की राजकुमारी? यहाँ क्यों?"

"महाराज का दर्शन करने। कलिंग विजित होने के बाद [illegible] की मृत्यु हुई। राजकुमारी मातृ पितृहीन हैं—युवती हैं, इस [illegible] तक उन्होंने विवाह नहीं किया है। महाराज से मिलने की इच्छा [illegible] राजधानी में आ रही हैं।"

"उनको कहाँ ठहराओगे?"

"महाराज की आज्ञा लेने के लिये आया हूँ।"

सम्राट ने कुछ [illegible] सोच कर कहा—"उनके रहने के [illegible] अलग ही उद्यान भवन में आयोजन करो। उनके साथ कितने [illegible] हैं?"

"[illegible]"

"उनके लिये [illegible] आयोजन करो। मैं स्वयं आ रहा हूँ।"

अमरावती-भवन में जाकर सम्राट् ने समस्त आयोजन का पर्यवेक्षण किया। उन्होंने राजकुमारी के शयनागार, स्नानागार और विश्रामागार देखे। कहीं-कहीं असबाबों का परिवर्त्तन करने की आज्ञा दी। राजप्रासाद से भाँति-भाँति की बहुमूल्य वस्तुयें लाई गई। संगीतागार में वीणा, सितार और बाँसुरी की परीक्षा करके देखा। प्रसाधन-कक्ष में अंग-विन्यास के सब उपकरण हैं या नहीं, यह लक्ष्य किया। दास-दासियों के रहने की जगह का भी उन्होंने स्वयं परिदर्शन किया।

सम्राट् ने कलिंग-राज्य जय किया है। उसी देश की राजकुमारी आ रही हैं। किस उद्देश्य से? अनुयोग—अभियोग करने? सम्राट् शंकित हुये।

शाम को उद्यान-भवन फूलों से सज्जित हुआ। रात को दीपावली हुई। रक्षकों ने चारों ओर दीपमालायें सजा कर इन्द्रपुरी रच दी।

सम्राट् की आज्ञा से सेनापति एक टुकड़ी सेना के साथ बढ़ कर राजकुमारी को साथ लाये। प्रत्युद्गमन के लिये नगर के द्वार पर स्वयं सम्राट् खड़े थे।

सूर्य अस्त हो जाने के पहले राजकुमारी मालविका नगर-द्वार पर आई। उनको देखकर सम्राट् कई कदम आगे बढ़ गये। राजकुमारी शिविका से उतर कर उनके चरण की वन्दना करने लगीं। पर सम्राट् ने शीघ्रता से हाथ पकड़ कर उन्हें रोका।

सम्राट् कुछ क्षणों तक राजकुमारी का हाथ छोड़ना भूल गये। उन्होंने अनेक सुन्दर स्त्रियां देखी थीं, किन्तु ऐसी सुन्दरी अब तक उनकी दृष्टि के सामने नहीं आई थी। अतुलनीय सौन्दर्य राजमय प्रकाशित करके सम्राट् के सामने विराजित हुआ। चंचलता-रहित स्थिर सौन्दर्य राजकुमारी के अंगों में तरंगित हो रहा था।

उनकी पोशाक और अलंकार उनके सौन्दर्य के अनुरूप थे। उनके ललाट के घुँघराले केशों पर एक बड़ा हीरा अस्तमान सूर्य-किरण से

चमक रहा था। छाती पर हीरे और मोती-जड़ी कञ्चुक थी और
मे हीरा और नीलम-जड़ी चूड़ियाँ थीं।

सभी मुग्ध और फैले नयनों से उन दो अपूर्व मूर्त्तियों को [illegible]
लगे। रमणी अपूर्व सुन्दरी थी; और पुरुष की मूर्त्ति तेजपूर्ण, धीर
सौम्य थी।

सम्राट् ने राजकुमारी का हाथ छोड़ कर कहा, "तुम्हारे [illegible]
से पाटलीपुत्र धन्य हुआ!"

राजकुमारी बोली—"मैं आपकी दासी हूँ।"

(४)

दिन बीतने लगे। राजकुमारी मालविका पाटलीपुत्र नगर में
आई है, किसीको भी नहीं मालूम। किसीने उनसे यह बात पू[illegible]
नहीं। सम्राट प्रतिदिन उनसे मिलते, नाना विषयों पर वार्त्तालाप
किन्तु सम्राट् राजकुमारी के आने का उद्देश्य कभी भी नहीं पूछते
बात उठाते ही नहीं थे।

मालविका से बात करते-करते सम्राट् विस्मित और चमत्कृत
राजकुमारी का विद्यानुराग, बहुमुखी विद्या का अनुशीलन, [illegible]
युक्तिपूर्ण सरस वार्त्तालाप, उनकी विनय और धीरता देखकर [illegible]
चकित हो जाते।

राजकुमारी का समय सुख से व्यतीत हो, इसके लिये सम्राट्
नाना व्यवस्थाएं की थीं। राजधानी में जो सब देखने योग्य स्थान
थे [illegible] राजकुमारी को भेज देते थे। पण्डितगण उनसे [illegible]
करने के लिये आते थे। दो-तीन दिन में ही सम्राट् समझ गये कि
राजकुमारी की [illegible] आमोद-प्रमोद में रुचि नहीं
[illegible] नहीं करते थे। मालविका कला-विद्या
[illegible] थी। कभी कभी वह मधुर स्वर से गाती
[illegible]

राज-कार्य समाप्त होने पर स्नान और भोजन के पहले सम्राट् एक र राजकुमारी के निकट जाते थे, फिर शाम को भ्रमण करके आकर नरी बार जाते थे। प्रारम्भ मे थोडे समय तक रहते थे, फिर साक्षात् । समय दीर्घ होने लगा। कभी सम्राट् अपनी फुलवारी से फूल ले ाते थे, कभी भूर्ज-पत्र में लिखित ग्रन्थ ले आते थे। राजकुमारी से ाना विषय पर आलोचना करते थे।

थोडे दिनों में सम्राट् सौन्दर्य का आकर्षण तीव्र भाव से अनुभव रने लगे। क्रमश. सम्राट् राजकुमारी को कुछ क्षणों तक न देखने चचल हो उठते। किन्तु वे अपने हृदय का भाव कैसे प्रकट करें? जकुमारी अतिथि थी, वह अपने चित्त का भाव व्यक्त नहीं करतीं, पने विषय मे कोई बात नहीं करतीं, अपनी बात छिडने पर कौशल दूसरा प्रसग उठातीं।

अशोक ने लक्ष्य किया था कि राजकुमारी ने नगर मे प्रवेश करने बाद अपने सब अलंकार खोल डाले थे, फिर कभी कोई अलंकार हीं पहिना। क्यों? सम्राट् इसका कोई कारण निर्णय नहीं कर ये।...

सध्या के समय खुले झरोखे के सामने बैठ कर सम्राट् और जकुमारी वार्त्तालाप कर रहे थे।

अशोक ने कहा—"राजकुमारी, तुम अपने विषय में कुछ भी कट करना नहीं चाहती हो। ऐसी क्या बात रह सकती है जिसे कहने तुम्हें बाधा है?"

"कुछ भी नहीं, महाराज! आपको तो सब कुछ मालूम है। मेरे ँ-बाप नहीं हैं, राज-गृह मैंने त्याग दिया है, एक आत्मीय के घर में हती हूँ। अपने बारे में कहने को कुछ भी नहीं है। अपनी बात करना ोक भी नहीं है।"

अशोक ने कलिङ्ग-राज्य-जय किया था और मालविका के गहराज से उतार दिये गये थे—राजकुमारी ने इन बातों का [illegible] नहीं किया।

सम्राट् ने कहा—"अनेक की आत्म-कथा अपनी प्रशंसा [illegible] है। मैं जानता हूँ कि तुमसे यह नहीं होगा। लेकिन तुम तो हृदय की कोई बात प्रकट ही नहीं करती हो। तुम्हारे इस नवी[illegible] में कितनी आशाएँ, कितनी कल्पनाएँ, कितनी आकांक्षाएँ उद[illegible] होंगी। मैं उन्हीं बातों को सुनना चाहता हूँ। तुम क्या कामना [illegible] हो, तुम्हारी क्या आकांक्षा है, तुम क्या चाहती हो?"

"महाराज, मेरी कुछ भी प्रार्थना नहीं है।"

"यह कठोर शब्द है! तुम्हारे निकट मैं सम्राट् नहीं हूँ। [illegible] क्या? तुम मुझे आज्ञा करो, मैं तुम्हारी आज्ञा पूरी करने का सु[illegible] चाहता हूँ।"

"महाराज, आपकी सज्जनता और आतिथ्य के लिये मैं आ[illegible] तथा आभारी हूँ और अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। मुझे [illegible] अभाव नहीं है।"

"यह तो केवल शिष्टाचार की बात है। क्या मैं इससे अधि[illegible] आशा नहीं कर सकता?"

"महाराज, आशा और लालसा दोनों ही की निवृत्ति नहीं है[illegible]"

"यह सच है। आशा पूर्ण होने पर ही क्या सुख होता है? [illegible] सकता है? सम्राट् को मुकुट पहिनने पर केवल सिर दर्द हो[illegible] और क्या लाभ है? यह पैतृक विशाल राज्य मेरे लिये [illegible] है। मैं यथाशक्ति प्रजा की भलाई करता हूँ, उनके [illegible] है, पर इसमें सुख और शान्ति कहाँ? यदि [illegible], किसी को शोक में सान्त्वना दे सकूँ, तभी [illegible] और जीवन सार्थक हो।"

अति कोमल स्वर से—उस स्वर में असीम करुणा और वेदना भरी थी—मालविका बोलीं—"मैं तो एक सामान्य मानवी हूँ, मैं देवी नहीं कि छल करूँगी। यदि घटना-चक्र दूसरी ओर घूमता, यदि मेरे चित्त की गति और तरह की होती, तो मैं अपने को आज धन्य समझती, किन्तु जगत् से मेरी स्पृहा नहीं है। देख रही हूँ कि इस क्षण भर के जीवन में केवल अनित्य की कामना है। सौन्दर्य, यौवन, धन-सम्पदा रहती है कितने दिन ? कौन किसे सुखी कर सकता है ? पिता का राज्य चला गया है, मैं इसे अच्छा ही समझती हूँ। कोई देवता अलक्ष्य मे मेरा हाथ पकड कर मुझे जगत् के बाहर ले जा रहे हैं। तुम कैसे मुझे जगत् मे वापस ला सकते हो ? अशोक, महाराज, मैं अब राजकुमारी नहीं हूँ, मैं अब भिक्षुणी हूँ।"

सिर उठाकर मालविका ने चन्द्र की ओर देखा। उनके मुख पर अलौकिक चमक थी, उनके नयनों में प्रशान्त कोमल दृष्टि थी। उन्होंने धीरे-धीरे सब पोशाक खोल डाली, सब गहने उतार कर फेंक दिये—जिस प्रकार भुजगिनी अपना निर्मोक त्याग देती है।

केवल एकमात्र गेरुआ वस्त्र पहिने हुई भिक्षुणी सम्राट् के सामने खडी थी।
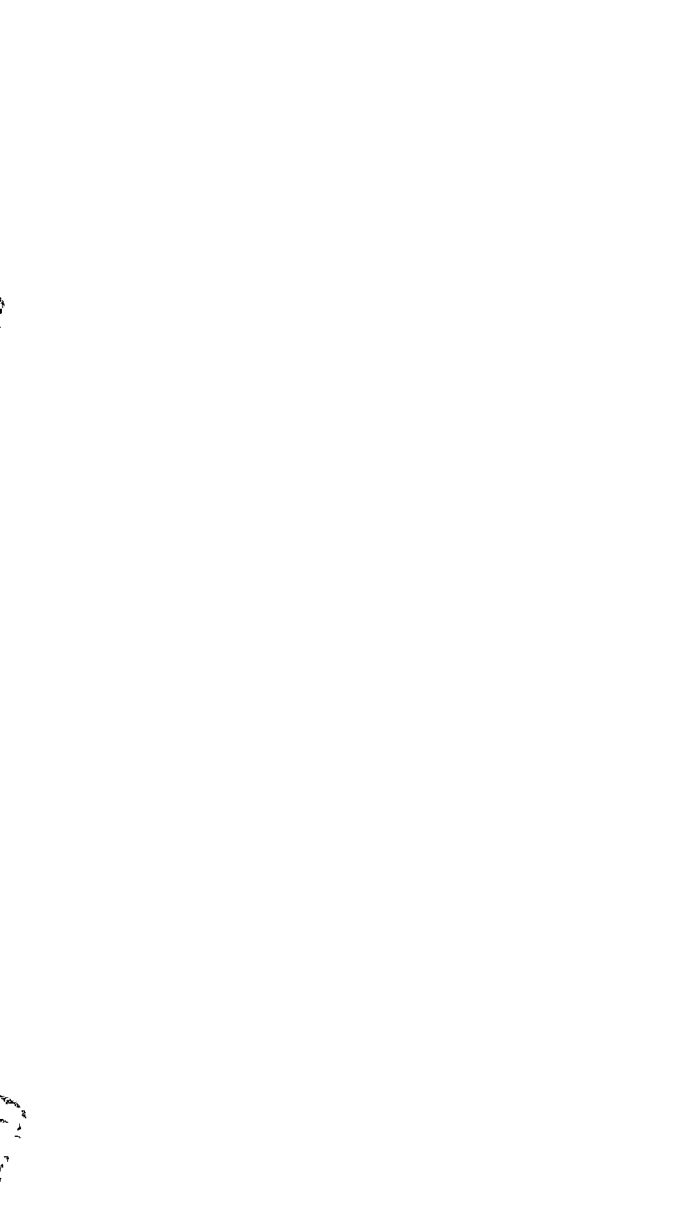
चित्रकार का यह चाहना, यह क्या चाहने के लिये ही चाहना है, यह किसी अप्राप्य को पाने के लिये चाहना है, यह किसे पता है ?

वह जिस चित्र का अंकन समाप्त करता था, वह एक अपूर्व वस्तु होती। पूर्ण सृष्टि की आनन्द-धारा उसमें से फूट निकलती थी। उसका चित्र कल्पना, अंकन की निपुणता तथा रंगों की स्वाभाविकता में अतीव मनोरम और अतुलनीय होता।

(२)

घना जंगल। जंगल के अन्त में पर्वत। पहाड़ के वदन में एक झरी। झरी का स्वच्छ निर्मल जल नीचे की ओर बह रहा है। उस जल की तेज गति कुछ दूर पर बड़े-बड़े पत्थरों से प्रतिहत होकर दो सकरी नदियों में होकर प्रवाहित है। उसी झरी के एक किनारे एक चौरस जगह पर पेड़ों की छाया के नीचे एक कुटीर थी।

कुटीर के तीनों तरफ डाल-पत्तों से शोभित कई वृक्ष थे। वे दाहिने, बायें और पीछे अर्ध चन्द्राकार से खड़े थे। वे वृक्ष पुष्पित लताओं के आवेष्टन से शोभित थे। वृक्षों का आश्रय छोड़ कर लतायें स्वच्छन्द गति से बढ़ते जाकर कुटीर के विचित्र छप्पर पर फैल गईं थीं। लताओं के आवरण से ढँकी वह कुटीर, लगता मानो, लताओं की छाया से ही रचित हुई थी।

विचित्र वह कुटीर थी। एक सुचित्रित चित्र की भाँति। कुटीर के भीतर और बाहर कलाकार के कला कौशल की अपूर्व छटा थी। उस कुटीर में आनन्द का व्याप्ति कलाकार के सरल चित्त का पता मिल सकता।—इसी कुटीर में वह चित्रकार रहता। इस कुटीर को उसने अपने हाथों से बनाया था।

(३)

उस राज्य के राजा शिकार खेलने के लिये आये। पहाड़ से उतरते समय उन्होंने उस कुटीर को देखा। कौतूहल से कुटीर

राजकुमारी उसीके निकट चित्रकारी सीखती थी। राजकुमारी की एकाग्र साधना से भी उस चित्र को पूर्ण रूप नहीं मिल सका, चित्रकार के कुछेक बार रंग फेरने से वह चित्र सम्पूर्ण हो गया। चित्रकारी में राजकुमारी की निपुणता प्राकृतिक थी। राजकुमारी बचपन से चित्र-कारी का अनुशीलन करती आ रही थी। उसे राज्य के अनेक कला-कारों की प्रशसा मिल चुकी थी।

एक दिन राजकुमारी लाख चेष्टा करने पर भी एक चित्र में अपना कल्पित भाव न दे सकी। पर चित्रकार की तूलिका की कई रेखाओं से वह भाव मूर्त्त हो उठा। राजकुमारी सोचती—भला यह चित्रकार है या जादूगर!

जब चित्रकार चित्रकारी में मग्न रहता, तब राजकुमारी की मुग्ध दृष्टि उसी की ओर लगी रहती। उसकी पुष्ट अँगुलियों में दबी तूलिका की लीलायित गति और मृदु कम्पन राजकुमारी के स्निग्ध हृदय में जाने कैसा एक स्पन्दन जाग्रत कर देता। जब वह ख्याली चित्रकार उदास दृष्टि से आसमान की ओर देखता रहता, उसका नारी-चित्त तब करुणा से भर उठता।

(५)

सावन का अन्त था। उजेली रात्रि थी। बारिश के बाद आसमान नीला और निर्मल हो गया था। नीले आसमान में चांदनी फैली हुई थी। पृथ्वी हँस रही थी। राज-भवन के स्वच्छ, निर्मल तालाब के दूब से ढँके हरियाले किनारे पर चित्रकार बैठा हुआ था। बाग के खिले फूलों की गन्ध से हवा मतवाली थी। उस एकान्त में बैठ कर चित्रकार दूर —आकाश की ओर देख रहा था। प्रकृति सौंदर्य-अमृत की वर्षा कर रही थी। और उसकी प्यासी आँखें उस अमृत को पी रही थीं।

राजकुमारी उसके पास आकर खड़ी हुई। उसने पुकारा—"चित्र-कार! चित्रकार!" राजकुमारी का स्वर मधुर और कोमल

ख्याली चित्रकार फुलवारी से निकल कर चला गया। राजकुमारी आँसू-भरे नयनों से एकटक उसी ओर देखने लगी। उसका मन कहने लगा—बुलाऊँ! पर ज़ुबान से बात नहीं निकली। उसने फिर सोचा—दौड़ कर उसका पीछा करूँ! पर क़दम नहीं उठा। वह भूमि पर अपने पैरों का चिह्न नहीं रख गया था, केवल राजकुमारी के चित्त-पथ पर अपनी अस्पष्ट चरण-रेखा छोड़ गया था।

(६)

चित्रकार अपनी कुटीर के द्वार पर आ गया। बाल अरुण की गुलाबी मुस्कान उस समय पूरब के आकाश में खिल उठी। उसकी पुकार से वन के सब पक्षी कलरव करते हुए कुटीर के आँगन में जमा हो गये। कोई उसके हाथ पर, कोई उसके सिर पर, कोई उसके कन्धे पर बैठा। कई उसके पैरों के निकट फुदकने लगे। वह एक को चुम्बन करके छोड़ देता, दूसरे को छाती से लगा कर उड़ा देता। हिरन के बच्चे वहाँ दौड़े हुये आये। एक उसके पैरों पर लोट गया, दूसरा उसका पैर चाट रहा था—सबसे छोटा नन्हीं-नन्हीं आँखों से विनती भरी दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था।

उसने बहुत दिनों के बाद अपने कुटीर में आकर चैन की साँस ली। राजपुरी की आबहवा उसे अच्छी नहीं लगी थी।

वह बढ़ कर झरी के निकट आकर खड़ा हुआ। तब प्रभात की तेज़ रवि-किरण स्वच्छ, निर्मल झरी-पानी पर गिरी थी। उसीके बीच जल-कण छोटे हीरे के टुकड़े की भाँति जगमगा रहे थे।

(७)

एक दिन शाम को उस कुटी में राजकुमारी का दूत आया। उसने चित्रकार के हाथ में राजकुमारी का भेजा हुआ लिफाफा दिया। चित्रकार ने खोलकर देखा—उसमें राजकुमारी का अंकित एक छोटा चित्र था। वह मुग्ध दृष्टि से उस चित्र की ओर देखता रहता।

चित्र है—वन के किनारे एक आम्र-शाखा में एक पक्षिणी ने बड़े ही यत्न से एक घोंसला बनाया है। दिन के अन्त में वह लौट आई

मुक्ति

अलकनन्दा श्रावस्ती नगरी की श्रेष्ठ नाचनेवाली थी। सौन्दर्य
। दौलत से उसकी इकहरी देह भरपूर थी, और थीं उसकी दो काली
ाँखें—जैसी शान्त वैसी ही गहरी—कदाचित् दुनिया की सब आँखों
सुन्दर।

नगरी के श्रेष्ठ नागरिकों की ज़ुबान पर उसका नाम रक्खा रहता
ा; स्वयं महाराज प्रशान्त वर्मा तक उसकी बहुत प्रशंसा करते थे।
पनी कमनीय देह-लता की प्रत्येक लीला में वह नित्य नये-नये भाव
ाती, अपने नृत्य-पटु चरणों की प्रत्येक गति में वह नये-नये छन्द
ाग्रत करती; वह अपनी गम्भीर आँखों की हरेक दृष्टि में नये-नये
ेम की रचना करती। उसके नाच में जाने कैसा एक जादू भरा
ा; उसके पैरों के घुँघरूओं में जाने कैसा एक शराब का-सा आवेश
ा...

वह एक वसन्त काल की सन्ध्या थी। पश्चिम के आकाश के
ादलों के सिर पर फैली हुई लाली क्रमशः पूरब के आकाश के सुनहले
काश की धाराओं में विलीन हो रही थी। नगरी के एक प्रान्त में,
र आसमान पर, पूर्णिमा का चन्द्रमा उदय हो रहा था, धीरे-धीरे
ौर छिपे-छिपे—किसी शर्मीली नववधू की तरह।

फूल और हरियाली से भरी श्रावस्ती नगरी मानो खिल-खिल कर
ँस रही थी। हरेक घर के द्वार पर मंगल-कलश धरे हुये थे, घरों की
ौखटों पर फूलों का हार था, सड़कों पर हँसी और गाने प्रतिध्वनित
ो रहे थे—सारी नगरी एक पागल यौवन के आवेग से मतवाली हो
ठी थी। एक विशाल कमरे में, अति कोमल बिछौने पर दूध-फे

अलकनन्दा ने पुकारा—"विनता !"

दासी आकर एक तरफ़ खड़ी हुई।

पुरन्दर ने क्रोधित स्वर से पूछा—"किसने उसे यहाँ आने दिया ? । यह भीख माँगने की जगह है ?"

दासी ने डर के मारे कोई उत्तर नहीं दिया। सन्यासी कुछ नहीं ा, वह केवल प्रशान्त दृष्टि से अलकनन्दा की ओर देखने लगा। वनेवाली ने दासी से कहा—"सन्यासी को भीख दो, विनता ! और सी को यहाँ न आने देना—जाओ।"

तिरस्कार से छुटकारा पाकर दासी तेजी से चली गई। सन्यासी चाप, स्थिर और गम्भीर भाव से खड़ा रहा।

"यह क्या, तुम उसके साथ नहीं गये ?"—अलकनन्दा बोली।

सन्यासी ने कहा—"देवी, मैं धन नहीं चाहता हूँ।"

"तो क्या चाहते हो, प्रभु ? गहने ? मेरी ये हीरे की चूड़ियाँ गे ?"

सन्यासी ने कहा—"नहीं।"—उसके अधरों पर कौतुक की कान खिल उठी।

चकित पुरन्दर श्रेष्ठी असहनीय क्रोध से चिल्ला उठा—"तो हे क्या चाहिये ? मोती का हार ?"

निहल नाचनेवाली ने पूछा—"लोगे, मेरा मोती का हार लोगे ?"

सन्यासी ने फिर कहा—"नहीं।"—और फिर उसके ओठों पर तुक की हँसी दीख पड़ी।

पुरन्दर क्रोध के मारे पागल-सा हो उठा—उसका स्वर बिगड़ था। उसने चिल्लाकर कहा—"वह जो कुछ चाहता है देकर उसे ां से भगाओ, अलकनन्दा ! उसकी दृष्टि तपे लोहे की तरह मेरी र में चुभ रही है।"

सन्यासी की अकारण हँसी से दर्शकों का चित्त क्षुब्ध हो गया—न्होंने इस हँसी को व्यंग समझा।

"मैं एक नाचनेवाली हूँ—मुझे धर्म नहीं मालूम है। विलास
ही देह है, निर्लज्जता मेरा भूषण है। मुझे लेकर, संन्यासी, तुम्हें
री हानि होगी।"

"देवी, हम लोग हानि-लाभ का हिसाब नहीं लगाते हैं—हम
संन्यासी हैं। कर्म में हमारा अधिकार है—हम फल की आशा नहीं
ते हैं।"

"तुम धार्मिक जीवन से गिर जाओगे।"

"धर्म तो कभी भी नष्ट नहीं होता है। धर्म काँच का बर्तन नहीं
कि जरा-सी चोट से जिसके टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। जिस धर्म को
क बार पाया है, मुझे उसे खोने का भय नहीं है।"—कहकर संन्यासी
स्कराने लगा।

अलकनन्दा उसके विश्वास और ज्ञान की गहराई देख कर चकित
गई। वह बोली—"मुझे कहाँ ले चलोगे?"

"भगवान् बुद्ध के चरणों के निकट।"

"उससे मुझे क्या लाभ होगा?"

"मुक्ति।"

"मुक्ति! मैं मुक्ति नहीं चाहती, सन्यासी! मेरे जीवन की बहुत-सी
मनाएँ अभी तक अतृप्त हैं, अनेक इच्छाएँ अभी तक अपूर्ण हैं।
न्यासी, मैं सन्यास नहीं चाहती! अपनी यह बेशुमार दौलत, उपभोग
र प्रसिद्धि छोड़कर गुफा में जाकर संन्यासी-जीवन बिताने का
गलपन मुझ में नहीं है।"—उसके स्वर में एक आर्तनाद की ध्वनि
ज उठी।

सन्यासी की दृष्टि में जाने कैसी एक माया खिल उठी। उसके
रे चेहरे पर विश्व-विजयी की हँसी चमक रही थी। उस हँसी में
णा नहीं है, विद्रूप नहीं है—केवल करुणा है।

सन्यासी ने कहा—"हृदय की दीनता को विलासिता और उपभोग
आवरण में ढँक कर नहीं रक्खा जा सकता। राख में ढँकी आग
ी तरह वह धीरे-धीरे सारे अन्तर और बाहर को भी जला देती है।

इसीलिये मनुष्य की दीनता की छाया उसकी आँखो में, चेहरे पर और देह पर भी खिल उठती है। तुम अपने हृदय की दीनता को बाहर के विलास के आवरण मे ढँक रखने की चेष्टा करके धोखा खा रही हो! देवी, यह आवरण बिलकुल मिथ्या है! भोग में सन्तोष नहीं मिल सकता—त्याग में सन्तोष मिलता है। कामना और इच्छा का कभी भी अवसान नहीं होता—तुम जितना ही उपभोग करोगी, उतना ही तुम्हारी कामना घी से पुष्ट आग की तरह बढती ही रहेगी।"

अलकनन्दा ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह केवल उस तेज और ज्ञान से भरे मुख की ओर देखती रही। दर्शक-मण्डली सन्यासी पर निष्फल क्षोभ से शोर कर उठी।

सन्यासी कहता गया—"दु:ख, वेदना और शोक से भरे इस जीवन को तुम क्यों चाहती हो, नारी? तुम मेरे साथ आओ। मैं तुम्हें एक ऐसा जीवन दूँगा, जिसमे दु:ख नही है, वेदना नहीं है, विषाद नहीं है—है केवल असीम आनन्द और सुख। यह सुख नहीं है—यह दु:ख की फाँसी है। तुम मोह से अन्धी हो, इसलिये तुमने सुख के भ्रम मे अपने हाथों से अपने गले मे दु:ख की फाँसी पहिनाई है। यह उपभोग नहीं है देवी,—यह आत्म-हत्या है! विलास और भोग के बीच तुमने अपने सत्य का पथ भुला दिया है। इसीलिये, त्याग की दीक्षा देकर तुम्हें उस सत्य-पथ का पता बतलाने के लिये आया हूँ। खोल कर फेंक दो अपनी वे सब विलास की चीजें—ये वस्त्र, ये अलङ्कार! पोंछ डालो अपनी आँखों की कामना की यह काली स्याही! उठा लो सन्यासी की पीली धोती—देख लो उसमे कितनी शान्ति और सन्तोष है।"

सचमुच, अलकनन्दा ने अपने पैरों के घुँघरू दूर फेंक दिये। फिर सन्यासी के पैरों पर गिर कर उसने कहा—"मेरे इस जीवन मे तुम्हारी बातें सच हों!"

सन्यासी ने उसे असीम स्नेह से भूमि पर से उठा लिया। उसकी आँखों में आनन्द खिल उठा, चेहरे पर गर्व चमकने लगा।

सन्यासी ने अकुठित भाव से एक-एक करके उसके गहने उतार लिये, अकम्पित हाथ से उसकी देह पर अपनी पीली चादर डाल दी ; उसके ललाट पर पीले चन्दन का टीका लगा दिया ; नगरी की श्रेष्ठ नर्त्तकी ने संन्यासी का भेष ले लिया।

उसके कदरदाँ लोग हाहाकार कर उठे—"तुम मत जाओ अलकनन्दा,—श्रावस्ती नगरी को अँधेरी करके मत जाओ !"

वह बोली—"मेरे मुक्ति-पथ से मुझे न लौटाओ, मित्र ! इस जीवन में जिस-सत्य को नहीं पाया है, मैं उसकी खोज में जा रही हूँ। मुझे अब न बुलाओ !"

सन्यासी के साथ अलकनन्दा सड़क पर आकर खड़ी हुई।

—"बुद्ध शरण गच्छामि।"
—"धर्म शरण गच्छामि।"
—"सघ शरणं गच्छामि।"

सन्यासी और सन्यासिनी सडक पर से जाने लगे। अनगिनती पुरुष और स्त्रियाँ उनकी ओर विस्मय से देखते रहे, सडक के किनारे की खिड़कियाँ एक पर एक खुल जाने लगीं। यह मानो स्वप्न था। नगरी की श्रेष्ठ विलासिनी सन्यासिनी होकर चली जा रही है। जिसके कोमल चरणों ने कभी भूमि का स्पर्श नही किया था, आज वही नगे पैर सड़क के निकले हुये पत्थरों पर से चली जा रही थी। राजा की दौलत जिसे एक पहर के लिये भी नहीं खरीद सकी थी, वह आज अपनी इच्छा से एक भिखारी संन्यासी के साथ जा रही थी।

इसी तरह एक वसन्त की सन्ध्या मे किशोरी अलकनन्दा फटी धोती मे अपनी खिलती-युवा देह को ढँक कर भिखारिन के भेष मे नगरी की इस सडक पर मे आई थी ! और आज वसन्त की एक सन्ध्या में नाचनेवाली अलकनन्दा संन्यासिनी के भेष मे एक दीन की तरह इसी सड़क से फिर चली गई !

नगरी की रोशनी गुल हो गई—असख्य हृदय हाहाकार कर उठे।

माँ

सिविल सर्विस का इम्तिहान पास करने के बाद मैं दो साल से,...
.. मे असिस्टेन्ट मजिस्ट्रेट हूँ।

मेरे जीवन की कविता, सङ्गीत और आनन्द झूठी बातों के वायु मण्डल मे कुचले जा रहे हैं।

गवाहों की सरासर झूठी गवाही सुनकर जी घबराता है, और मैं सोचता हूँ—शायद झूठ ही इन मनुष्यों का सब कुछ है।

मगर उस दिन एक अनोखी घटना हो गई। यह घटना सच है, इसीलिये यह उपन्यास से कहीं अधिक वास्तव है।

कठघरे मे एक अधेड़ औरत आकर खड़ी हुई। यह एक मजदूर घराने की विधवा थी। उसके चेहरे से गरीबी साफ नजर आती थी, मगर उसके पीले मुँह पर एक असाधारण ज्योति टपक रही थी।

उसकी आँखों मे आँसू डबडबा रहे थे। दबा हुआ रोदन राह भूल कर उसकी आत्मा को चचल और गीली कर रहा था।

मुकदमा यह था—उसका लडका अवतार क़त्ल के अपराध का मुजरिम था—उसका इकलौता लडका मृत्यु के दरवाजे पर। पुलिस का बयान था—मुजरिम मुहल्ले की एक लडकी से मुहब्बत करता था। लडकी के माँ बाप उसकी शादी अवतार से करना चाहते थे। इसीलिये उन्होंने अवतार से कुछ रुपया भी लिया था।

मगर मनुष्यों की तृष्णा का अन्त नहीं है। कुछ दिनों के बाद एक दूसरे आदमी ने उस लड़की से शादी करने का प्रस्ताव किया।

उन लोगों को यह आदमी, अवतार से हर बात मे ज्यादा योग्य मालूम हुआ।

अब लडकी के मा-बाप अवतार को भगाने की कोशिश करने लगे। मगर अवतार अपना हक नहीं छोड़ना चाहता था। बस, फिर क्या था—झगडा शुरू हो गया।

अवतार अपनी कौम के चौधरी के पास न्याय के लिये रोया। पचायत बुलाई गई। अवतार जीत गया। मगर दूसरा पक्ष माननेवाला नहीं था।

बाबूलाल रधिया को देख कर पागल हो गया था। वह किसी तरह उसे छोडने के लिये तैयार नही था।

झगडा दिन पर दिन बढने लगा। दोनो पक्ष बहस करते ही गये। बाबूलाल ने फिर पञ्चायत कराई। रुपये के जरिये मे उसने कुछ लोगों को अपनी तरफ खींच लिया था। आखिर मे वह जीता। वहीं अवतार से बहस होते-होते मार-पीट होते-होते रह गई।

मगर उस दिन से अवतार और बाबूलाल मे गहरी दुश्मनी हो गई।

बाबूलाल से रधिया की शादी हो गई. जोश मे आकर उसने खूब खर्च कर डाला।

फिर एक दिन बाबूलाल अपना विजय-गर्व दिखाने के लिये रधिया को साथ लेकर अवतार के घर पर गया और झगडा लगा दिया। अव-तार इस दृश्य को सहन नहीं कर सका। फिर झगडा शुरू हो जाने पर उसने अपना धैर्य खो दिया.

अवतार ने जोश मे आकर गँडासा उठाकर जोर से बाबूलाल के सिर पर दे मारा। एक ही चोट से बाबूलाल गिरा और मर गया। रधिया झगडे के समय मे ही भाग गई थी, नहीं तो वह भी नहीं बचती।

माँ

सिविल सर्विस का इम्तिहान पास करने के बाद मैं दो साल से,
.. मैं असिस्टेन्ट मजिस्ट्रेट हूँ।

मेरे जीवन की कविता, सङ्गीत और आनन्द झूठी बातों के वायु मण्डल में कुचले जा रहे हैं।

गवाहों की सरासर झूठी गवाही सुनकर जी घबराता है, और मैं सोचता हूँ—शायद झूठ ही इन मनुष्यों का सब कुछ है।

मगर उस दिन एक अनोखी घटना हो गई। यह घटना सच है, इसीलिये यह उपन्यास से कहीं अधिक वास्तव है।

कठघरे में एक अधेड औरत आकर खड़ी हुई। यह एक मजदूर घराने की विधवा थी। उसके चेहरे से गरीबी साफ नजर आती थी, मगर उसके पीले मुँह पर एक असाधारण ज्योति टपक रही थी।

उसकी आँखों में आँसू डबडबा रहे थे। दबा हुआ रोदन राह भूल कर उसकी आँखों को चचल और गीली कर रहा था।

मुक़दमा यह था—उसका लडका अवतार कत्ल के अपराध का मुजरिम था—उसका एकलौता लडका मृत्यु के दरवाजे पर! पुलिस का बयान था—मुजरिम मुहल्ले की एक लड़की से मुहब्बत करता था। लडकी के माँ-बाप उसकी शादी अवतार से करना चाहते थे। इसीलिये उन्होंने अवतार से कुछ रुपया भी लिया था।

मगर मनुष्यों की तृष्णा का अन्त नही है। कुछ दिनों के बाद एक दूसरे आदमी ने उस लडकी से शादी करने का प्रस्ताव किया।

उन लोगो को यह आदमी, अवतार से हर बात मे ज्यादा योग्य मालूम हुआ।

अब लड़की के मा-बाप अवतार को भगाने की कोशिश करने लगे। मगर अवतार अपना हक नही छोडना चाहता था। बस, फिर क्या था—झगडा शुरू हो गया।

अवतार अपनी कौम के चौधरी के पास न्याय के लिये रोया। पचायत बुलाई गई। अवतार जीत गया। मगर दूसरा पक्ष माननेवाला नहीं था।

बाबूलाल रधिया को देख कर पागल हो गया था। वह किसी तरह उसे छोडने के लिये तैयार नही था।

झगडा दिन पर दिन बढने लगा। दोनों पक्ष बहस करते ही गये। बाबूलाल ने फिर पञ्चायत कराई। रुपये के जरिये से उसने कुछ लोगों को अपनी तरफ खींच लिया था। आखिर मे वह जीता। वहीं अवतार से बहस होते-होते मार-पीट होते-होते रह गई।

मगर उस दिन से अवतार और बाबूलाल मे गहरी दुश्मनी हो गई।

बाबूलाल से रधिया की शादी हो गई .जोश मे आकर उसने खूब खर्च कर डाला।

फिर एक दिन बाबूलाल अपना विजय-गर्व दिखाने के लिये रधिया को साथ लेकर अवतार के घर पर गया और झगडा लगा दिया। अवतार इस दृश्य को सहन नहीं कर सका। फिर झगडा शुरू हो जाने पर उसने अपना धैर्य खो दिया .

अवतार ने जोश मे आकर गँडासा उठाकर जोर से बाबूलाल के सिर पर दे मारा। एक ही चोट से बाबूलाल गिरा और मर गया। रधिया झगडे के समय मे ही भाग गई थी, नहीं तो वह भी नहीं बचती।

माँ

सिविल सर्विस का इम्तिहान पास करने के बाद मैं दो साल से, • मैं असिस्टेन्ट मजिस्ट्रेट हूँ।

मेरे जीवन की कविता, सङ्गीत और आनन्द झूठी बातों के वायु मण्डल में कुचले जा रहे हैं।

गवाहों की सरासर झूठी गवाही सुनकर जी घबराता है, और मैं सोचता हूँ—शायद झूठ ही इन मनुष्यों का सब कुछ है।

मगर उस दिन एक अनोखी घटना हो गई। यह घटना सच है, इसीलिये यह उपन्यास से कहीं अधिक वास्तव है।

कठघरे मे एक अधेड़ औरत आकर खडी हुई। यह एक मजदूर घराने की विधवा थी। उसके चेहरे से गरीबी साफ नजर आती थी, मगर उसके पीले मुँह पर एक असाधारण ज्योति टपक रही थी।

उसकी आँखो मे आँसू डबडबा रहे थे। दबा हुआ रोदन राह भूल कर उसकी आँखो को चचल और गीली कर रहा था।

मुकदमा यह था—उसका लडका अवतार कत्ल के अपराध का मुजरिम था—उसका एकलौता लडका मृत्यु के दरवाजे पर! पुलिस का बयान था—मुजरिम मुहल्ले की एक लडकी से मुहब्बत करता था। लडकी के माँ-बाप उसकी शादी अवतार से करना चाहते थे। इसीलिये उन्होंने अवतार से कुछ रुपया भी लिया था।

मगर मनुष्यो की तृष्णा का अन्त नही है। कुछ दिनों के बाद एक दूसरे आदमी ने उस लडकी से शादी करने का प्रस्ताव किया।

उन लोगों को यह आदमी, अवतार से हर बात में ज्यादा योग्य मालूम हुआ।

अब लड़की के माँ-बाप अवतार को भगाने की कोशिश करने लगे। मगर अवतार अपना हक नहीं छोड़ना चाहता था। बस, फिर क्या था—झगड़ा शुरू हो गया।

अवतार अपनी क़ौम के चौधरी के पास न्याय के लिये रोया। पंचायत बुलाई गई। अवतार जीत गया। मगर दूसरा पक्ष माननेवाला नहीं था।

बाबूलाल रधिया को देख कर पागल हो गया था। वह किसी तरह उसे छोड़ने के लिये तैयार नहीं था।

झगड़ा दिन पर दिन बढ़ने लगा। दोनों पक्ष बहस करते ही गये। बाबूलाल ने फिर पञ्चायत कराई। रुपये के जरिये से उसने कुछ लोगों को अपनी तरफ खींच लिया था। आखिर में वह जीता। वहीं अवतार से बहस होते-होते मार-पीट होते-होते रह गई।

मगर उस दिन से अवतार और बाबूलाल में गहरी दुश्मनी हो गई।

बाबूलाल से रधिया की शादी हो गई. जोश में आकर उसने खूब खर्च कर डाला।

फिर एक दिन बाबूलाल अपना विजय-गर्व दिखाने के लिये रधिया को साथ लेकर अवतार के घर पर गया और झगड़ा लगा दिया। अवतार इस दृश्य को सहन नहीं कर सका। फिर झगड़ा शुरू हो जाने पर उसने अपना धैर्य खो दिया ..

अवतार ने जोश में आकर गँडासा उठाकर जोर से बाबूलाल के सिर पर दे मारा। एक ही चोट से बाबूलाल गिरा और मर गया। रधिया झगड़े के समय में ही भाग गई थी, नहीं तो वह भी नहीं बचती।

इस हत्या का एक ही गवाह था और वह थी—अवतार की माँ। पुलिस के सामने अवतार ने कत्ल करना स्वीकार किया था, मगर पीछे कानून की सहायता पाने पर, वकील की सलाह से, सब अस्वीकार कर दिया।

यह हत्या दिन में होने पर भी गवाह या सबूत कुछ नहीं था, इसलिये पुलिस बहुत घबराहट में थी।

गवाह कठघरे में आकर खड़ा हो गया, मुजरिम की जबान से एक अस्फुट शब्द निकला "माँ!" माँ ने लड़के की ओर देखा; उसका रुका हुआ रोदन बाहर निकलने की चेष्टा कर रहा था। जिरह होने लगी...

सवाल था—"क्या इस मुजरिम ने यह कत्ल किया था?"

माँ बोली—"हाँ।"

मैं आग्रह के साथ माँ की ओर देखने लगा। उसके चेहरे पर मानसिक हलचल का निशान साफ दीख पड़ा था। मातृस्नेह और कर्तव्य-ज्ञान में भयानक लड़ाई छिड़ी हुई थी।

"तुमने अपनी आँखों से कत्ल करते देखा है?"

फिर माँ ने सच्चित जवाब दिया—"हाँ।"

"तुम जो कुछ कह रही हो, क्या उसका परिणाम जानती हो?"

"जानती हूँ।"

"तुम्हारे लड़के को फाँसी हो सकती है, क्या यह तुम्हारे ख्याल में आया है?"

अब निद्रित माता जाग पड़ी। विधवा बड़े जोर से रोकर बोली—"हुजूर...गुस्से से बेहोश होकर मार दिया था ..उसे क्षमा कर दो!"

आह, अन्धी औरत! वह नहीं जानती थी कि कानून कैसा निर्दय और कठोर होता है!

फिर जिरह होने लगी

"अब भी तुम सच बात कह सकती हो। क्या तुम्हें डरवा कर पुलिस यह सब बातें कहला रही है? अच्छी तरह से सोचकर, ठीक ठीक कहना ."

"जो कुछ मैं जानती हूँ, वही पुलिस ने कहने के लिये कहा है।"

"तब तुम झूठ तो नहीं कह रही हो?"

"नहीं।"

"तुम्हारे लड़के ने कत्ल किया था?"

"हाँ।"

मुजरिम अब नहीं सह सका। उसने बडे जोर से चिल्लाकर कहा—

"डाइन! तू मुझको रत्ती भर भी प्यार नहीं करती।"

अस्त होते हुये सूर्य की धूप अदालत के कमरे के अन्दर फैल रही थी—धूप आकर माँ के मुँह पर पड रही थी।

कठघरे मे से उतरते हुये माँ बोली—"तुझको प्यार करती हूँ बेटा, मगर तुझसे भी ज्यादा धर्म को प्यार करती हूँ। धर्म से बढ़कर और क्या हो सकता है?"

मेरे अनजान में, मेरे हाथ से लेखनी गिर पड़ी थी और मैं चकित होकर, उस छोटे घर की मजदूरिन को देख रहा था।

मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो अस्त होते हुए सूर्य की धूप मे, उस दिन, एक [illegible] ज्योति आकर फैल गई।

नीरव [illegible] वायुमण्डल से चकित हो गई थी

इस हत्या का एक ही गवाह था और वह थी—अवतार की माँ। पुलिस के सामने अवतार ने कत्ल करना स्वीकार किया था, मगर पीछे कानून की सहायता पाने पर, वकील की सलाह से, सब अस्वीकार कर दिया।

यह हत्या दिन में होने पर भी गवाह या सबूत कुछ नहीं था, इसलिये पुलिस बहुत घबराहट में थी।

गवाह कठघरे में आकर खड़ा हो गया, मुजरिम की जबान से एक अस्फुट शब्द निकला "माँ!" माँ ने लड़के की ओर देखा, उसका रुका हुआ रोदन बाहर निकलने की चेष्टा कर रहा था। जिरह होने लगी..

सवाल था—"क्या इस मुजरिम ने यह कत्ल किया था?"

माँ बोली—"हाँ।"

मैं आग्रह के साथ माँ की ओर देखने लगा। उसके चेहरे पर मानसिक हलचल का निशान साफ दीख पड़ा था। मातृस्नेह और कर्तव्य-ज्ञान में भयानक लडाई छिड़ी हुई थी।

"तुमने अपनी आँखों से कत्ल करते देखा है?"

फिर माँ ने संक्षिप्त जवाब दिया—"हाँ।"

"तुम जो कुछ कह रही हो, क्या उसका परिणाम जानती हो?"

"जानती हूँ।"

"तुम्हारे लडके को फाँसी हो सकती है, क्या यह तुम्हारे ख्याल में आया है?"

अब निद्रित माता जाग पड़ी। विधवा बडे जोर से रोकर बोली—"हुजूर गुस्से से बेहोश होकर मार दिया था. उसे क्षमा कर दो!"

आह, अन्धी औरत! वह नहीं जानती थी कि कानून कैसा निर्दय और कठोर होता है!

फिर जिरह होने लगी..

"अब भी तुम सच बात कह सकती हो। क्या तुम्हे डरवा कर पुलिस यह सब बातें कहला रही है ? अच्छी तरह से सोचकर, ठीक ठीक कहना. ."

"जो कुछ मै जानती हूँ, वही पुलिस ने कहने के लिये कहा है।"

"तब तुम झूठ तो नही कह रही हो ?"

"नही।"

"तुम्हारे लड़के ने कत्ल किया था ?"

"हाँ।"

मुजरिम अब नहीं सह सका। उसने वडे जोर से चिल्लाकर कहा—"डाइन ! तू मुझको रत्ती भर भी प्यार नहीं करती !"

अस्त होते हुये सूर्य की धूप अदालत के कमरे के अन्दर फैल रही थी—धूप आकर माँ के मुँह पर पड रही थी।

कठघरे में से उतरते हुये माँ बोली—"तुझको प्यार करती हूँ बेटा, मगर तुझसे भी ज्यादा धर्म को प्यार करती हूँ। धर्म से बढकर और क्या हो सकता है ?"

मेरे अनजान मे, मेरे हाथ से लेखनी गिर पड़ी थी और मैं चकित होकर, उस छोटे घर की मजदूरिन को देख रहा था।

मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो अस्त होते हुए सूर्य की धूप मे, उस दिन, एक नई अपूर्व ज्योति आकर फैल गई।

नीरव नि.स्पन्द अदालत मानो एक अज्ञात वायुमण्डल से चकित हो गई थी।

इस हत्या का एक ही गवाह था और वह थी—अवतार की माँ। पुलिस के सामने अवतार ने कत्ल करना स्वीकार किया था, मगर पीछे कानून की सहायता पाने पर, वकील की सलाह से, सब अस्वीकार कर दिया।

यह हत्या दिन में होने पर भी गवाह या सबूत कुछ नहीं था, इसलिये पुलिस बहुत घबराहट में थी।

गवाह कठघरे में आकर खडा हो गया; मुजरिम की जबान से एक अस्फुट शब्द निकला "माँ!" माँ ने लड़के की ओर देखा; उसका रुका हुआ रोदन बाहर निकलने की चेष्टा कर रहा था। जिरह होने लगी .

सवाल था—"क्या इस मुजरिम ने यह कत्ल किया था?"

माँ बोली—"हाँ।"

मै आग्रह के साथ माँ की ओर देखने लगा। उसके चेहरे पर मानसिक हलचल का निशान साफ दीख पड़ा था। मातृस्नेह और कर्तव्य-ज्ञान मे भयानक लड़ाई छिड़ी हुई थी।

"तुमने अपनी आँखों से कत्ल करते देखा है?"

फिर माँ ने सत्वित जवाब दिया—"हाँ।"

"तुम जो कुछ कह रही हो, क्या उसका परिणाम जानती हो?"

"जानती हूँ।"

"तुम्हारे लडके को फाँसी हो सकती है, क्या यह तुम्हारे ख्याल में आया है?"

अब निद्रित माता जाग पटी। विधवा बडे जोर से रोकर बोली—"हुजूर.. गुस्से से बेहोश होकर मार दिया था...उसे क्षमा कर दो!"

आह, अन्धी औरत! वह नहीं जानती थी कि क़ानून कैसा निर्दय और कठोर होता है।

फिर जिरह होने लगी .

"अब भी तुम सच बात कह सकती हो। क्या तुम्हें डरवा कर पुलिस यह सब बातें कहला रही है ? अच्छी तरह से सोचकर, ठीक ठीक कहना .."

"जो कुछ मैं जानती हूँ, वही पुलिस ने कहने के लिये कहा है।"

"तब तुम झूठ तो नहीं कह रही हो ?"

"नही।"

"तुम्हारे लडके ने कत्ल किया था ?"

"हाँ।"

मुजरिम अब नहीं सह सका। उसने बडे ओर से चिल्लाकर कहा—"डाइन ! तू मुझको रत्ती भर भी प्यार नहीं करती !"

अस्त होते हुये सूर्य की धूप अदालत के कमरे के अन्दर फैल रही थी—धूप आकर माँ के मुँह पर पड रही थी।

कठघरे मे से उतरते हुये माँ बोली—"तुझको प्यार करती हूँ बेटा, मगर तुझसे भी ज्यादा धर्म को प्यार करती हूँ। धर्म से बढ़कर और क्या हो सकता है ?"

मेरे अनजान मे, मेरे हाथ से लेखनी गिर पडी थी और मैं चकित होकर, उस छोटे घर की मजदूरिन को देख रहा था।

मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो अस्त होते हुए सूर्य की धूप मे, उस दिन, एक नई अपूर्व ज्योति आकर फैल गई।

नीरव नि.स्पन्द अदालत मानो एक अज्ञात वायुमण्डल से चकित हो गई थी।

जलन

दफ्तर में बैठ कर श्रीकृष्ण काम कर रहा था। 'छोकरा' ने उसके हाथ में एक लिफाफा देकर कहा—"अभी डाकिया दे गया।"

परिचित हस्ताक्षर का पत्र पाकर श्रीकृष्ण चकित हो गया—कुछ नाराज भी हुआ। किसने यह पत्र लिखा है, यह पता लगाने में उसे रत्ती भर भी देर नहीं लगी और इस कारण उसने पत्र को बिना खोले ही जेब में रख लिया। यह पत्र मीनाक्षी का था, पर इतने दिनों के पश्चात् इतनी जगहों के रहते मीनाक्षी ने दफ्तर के पते पर पत्र क्यों लिखा?

दफ्तर का कार्य जब कम हो आया, श्रीकृष्ण लिफाफा खोल कर पत्र पढ़ने लगा। आठ पृष्ठों की घनी पंक्तियोंवाली चिठ्ठी में मीनाक्षी ने लिखा था :—

तुम मेरा पत्र पाकर बहुत ही चकित हो जाओगे, यह मैं पहले ही कल्पना कर ले रही हूँ; क्योंकि अब तुम जिन लोगों से पत्र पाने की आशा करते हो, मेरा नाम उन सबके अन्त में है। फिर भी किसी समय तुम प्रतिदिन ही मेरे पत्र की आशा करते थे और किसी दिन समयाभाव में लिख न पाने पर तुम उदास हो जाते थे। मैंने आज फिर तुम्हें अनधिकार स्मरण किया है, इस कारण तुम अवश्य ही क्रोधित हो सकते हो, किन्तु तुमसे कुछ बातें कहने की बड़ी आवश्यकता आ पड़ी है। नहीं तो कदाचित् यह पत्र नहीं लिखा जाता।

भूमिका यह हुई।

पत्र लिखने के साधारण रिवाज़ के अनुसार तुम्हारा कुशल-मगल पूछना ही स्वाभाविक होता; किन्तु मनुष्य के जीवन में जो सहज और स्वाभाविक है, उनसे तुम्हारा रिश्ता बहुत ही कम है और मैं भी उन्हे भूल-सी जा रही हूँ।

चार-पाँच दिन पहिले की बात है—तुम ललिता को साथ लेकर क्रॉफोर्ड मार्केट मे गये थे, है न ? अपनी ईवनिङ्ग-ड्रेस मे तुम इतने सुन्दर दीख रहे थे कि कोई भी कुमारी युवती तुम्हारी कामना करने में दुख अनुभव नहीं करती; ललिता अरुणास के रग की साड़ी पहिने थी न ? मैं भी उस दिन मार्केट मे गई थी। शायद तुमने मुझे देखा था; शायद क्यों, अवश्य ही देखा था। पर मुझे देखते ही सहसा Curio की दूकान मे घुस कर एक पीतल की 'बुद्ध मूर्त्ति' पर दर-भाव करना क्यो शुरू कर दिया ? इस कारण कि साथ मे ललिता थी। किन्तु यह सुन कर तुम्हे चैन मिलेगा कि ललिता तुम्हारे चित्त की घबराहट नहीं समझ सकी थी।

ललिता को मैंने कैसे पहिचाना यह जानने का आग्रह होना तुम्हारे लिये स्वाभाविक है। किसी समय ललिता मेरी सहपाठिनी थी और यह बात हम दोनो में से कोई भी नहीं भूला है।

ललिता मुझे देख कर खड़ी हो गई।

"मीनाक्षी ! तुम ?"

मेरे साथ के बालक की ओर देखकर ललिता ने फिर कहा—"यह कौन है ? क्या तुम्हारा बच्चा है, मीनाक्षी ? वाह, बहुत सुन्दर है ! इसका क्या नाम रक्खा है ?"

मैंने केवल कहा—"कृष्ण। क्या यह नाम ठीक नहीं है ?"

"बिलकुल ठीक है। जानती हो, इसमे सिर्फ 'श्री' जोड देने पर मेरे पति का नाम हो जाता है !"

जलन

दफ्तर मे बैठ कर श्रीकृष्ण काम कर रहा था। 'छोकरा' ने उसके हाथ मे एक लिफाफा देकर कहा—"अभी डाकिया दे गया।"

परिचित हस्ताक्षर का पत्र पाकर श्रीकृष्ण चकित हो गया—कुछ नाराज भी हुआ। किसने यह पत्र लिखा है, यह पता लगाने मे उसे रत्ती भर भी देर नही लगी और इस कारण उसने पत्र को बिना खोले ही जेब मे रख लिया। यह पत्र मीनाक्षी का था, पर इतने दिनो के पश्चात् इतनी जगहो के रहते मीनाक्षी ने दफ्तर के पते पर पत्र क्यो लिखा ?

दफ्तर का कार्य जब कम हो आया, श्रीकृष्ण लिफाफा खोल कर पत्र पढने लगा। आठ पृष्ठो की घनी पक्तियोंवाली चिट्ठी मे मीनाक्षी ने लिखा था :—

तुम मेरा पत्र पाकर बहुत ही चकित हो जाओगे, यह मै पहले ही कल्पना कर ले रही हूँ, क्योंकि अब तुम जिन लोगो से पत्र पाने की आशा करते हो, मेरा नाम उन सबके अन्त मे है। फिर भी किसी समय तुम प्रतिदिन ही मेरे पत्र की आशा करते थे और किसी दिन समयाभाव से लिख न पाने पर तुम उदास हो जाते थे। मैंने आज फिर तुम्हे अनधिकार स्मरण किया है, इस कारण तुम अवश्य ही क्रोधित हो सकते हो, किन्तु तुमसे कुछ बाते कहने की बडी आवश्यकता आ पडी है। नहीं तो कदाचित् यह पत्र नहीं लिखा जाता।

भूमिका यह हुई।

पत्र लिखने के साधारण रिवाज के अनुसार तुम्हारा कुशल-मगल पूछना ही स्वाभाविक होता; किन्तु मनुष्य के जीवन मे जो सहज और स्वाभाविक है, उनसे तुम्हारा रिश्ता बहुत ही कम है और मैं भी उन्हे भूल-सी जा रही हूँ।

चार-पाँच दिन पहिले की बात है—तुम ललिता को साथ लेकर क्रॉफोर्ड मार्केट मे गये थे, है न ? अपनी ईवनिङ्ग-ड्रेस मे तुम इतने सुन्दर दीख रहे थे कि कोई भी कुमारी युवती तुम्हारी कामना करने मे दुख अनुभव नहीं करती, ललिता अणन्नास के रग की साडी पहिने थी न ? मैं भी उस दिन मार्केट मे गई थी। शायद तुमने मुझे देखा था; शायद क्यों, अवश्य ही देखा था। पर मुझे देखते ही सहसा Curio की दूकान में घुस कर एक पीतल की 'बुद्ध मूर्त्ति' पर दर-भाव करना क्यो शुरू कर दिया ? इस कारण कि साथ मे ललिता थी। किन्तु यह सुन कर तुम्हे चैन मिलेगा कि ललिता तुम्हारे चित्त की घबराहट नहीं समझ सकी थी।

ललिता को मैंने कैसे पहिचाना यह जानने का आग्रह होना तुम्हारे लिये स्वाभाविक है। किसी समय ललिता मेरी सहपाठिनी थी और यह बात हम दोनों मे से कोई भी नहीं भूला है।

ललिता मुझे देख कर खड़ी हो गई।

"मीनाक्षी ! तुम ?"

मेरे साथ के बालक की ओर देखकर ललिता ने फिर कहा—"यह कौन है ? क्या तुम्हारा बच्चा है, मीनाक्षी ? वाह, बहुत सुन्दर है ! इसका क्या नाम रक्खा है ?"

मैंने केवल कहा—"कृष्ण। क्या यह नाम ठीक नहीं है ?"

"बिलकुल ठीक है। जानती हो, इसमें सिर्फ 'री' जोड़ देने पर मेरे पति का नाम हो जाता है !"

उसने कहा—“मैं नहीं जानती थी कि तुम्हारे पति का यह नाम है।” पर तुम तो जानते हो कि यह नाम मेरा अनजाना नहीं है। डरो मत, मैंने ललिता को कुछ भी सन्देह करने का मौका नहीं दिया।

ललिता बोली—“आओ, अपने पति से तुम्हारा परिचय करा दूँ, मीनाक्षी ? आओ न, वे उस दूकान में गये हैं !”

ललिता के जल्दीपन मे बाधा देकर मैंने कहा—“मैं बाजार में खड़े-खडे किसी अजनबी से परिचय करना नहीं चाहती, अगर तुम अपने पति से मिलाना चाहो, तो किसी दिन मुझे अपने घर पर निमंत्रित कर सकती हो। पर इसकी भी कोई आवश्यकता नहीं है, ललिता, मैं आजकल बहुत व्यस्त हूँ। तुम्ही मेरे घर कभी आओ न ! मैं जरा दूर रहती हूँ। दादर मे 'मेहता भवन' की तीसरी मंजिल पर दो कमरे लिये हूँ। मेरा पता याद रहेगा ?”

ललिता ने कहा—“हाँ, याद रहेगा। पर तुमने चुपचाप शादी कर ली, यह खबर मैं नहीं पा सकी।”

मैंने कहा—“लेकिन यह बात तुम पर भी लग सकती है !”

ललिता ने मुस्कराकर कहा—“सही है। पर होस्टल में रहते समय हम लोगो ने वादा किया था कि एक दूसरे को बिना जताये शादी नहीं करेंगे।” क्षण भर के लिये रुक कर ललिता बोली—“पर तुम तो बदल गई हो, मीनाक्षी ! तुम दुबली और साँवली हो गई हो। तब तुम्हें देख कर हम लोगों को ईर्ष्या होती थी। आज तो पहली निगाह में तुम्हें पहिचान भी नहीं सकी थी। तुम ऐसी कैसे हो गई ?”

ललिता के प्रश्न के उत्तर मे मैंने कहा—“बहुत आसानी से। पर यहाँ बाजार मे खडे होकर वे सब बातें कही नहीं जा सकतीं। मेरे घर कभी आओ, तो बहुत-सी बातें कह सकूँगी।...अगले रविवार को आओगी ?”

ललिता ने आने का वचन दिया।

मैं अच्छी तरह कल्पना कर सकती हूँ कि यहाँ तक पत्र पढ़ कर तुम्हारा चेहरा निर्दय आनन्द और गर्व से चमक उठा होगा। तुमने अवश्य ही समझ लिया होगा कि मैंने विवाह किया है और तुम्हें न पाने की गहरी वेदना को थोड़ी सान्त्वना देने के लिये अपने विवाहज पुत्र का नाम तुम्हारे ही नाम का प्रथम शब्द छोड़ कर रक्खा है। तुम्हारी धारणा सच होने पर दुनिया मे Platonic प्रेम का और एक दृष्टान्त बन जाता, पर सच्ची बात यह है कि ..लेकिन इसमे पहले ललिता से मेरे घर मे मुलाकात का किस्सा तुम्हे सुना दूँ।

'महता भवन' की तीसरी मंजिल पर जो दो कमरे मैं लिये हूँ, वहाँ सचमुच ही ललिता रविवार के दोपहर को आ पहुँची।

उस समय मैं कृष्ण को पढा रही थी।

मेरे कमरे मे आते ही ललिता ने शोर मचाया! कहा—"इसके बाप कहाँ हैं? जल्दी उनसे मेरा परिचय करा दो! वे हैं कहाँ?"

ललिता से बैठने के लिये कहा। पर उस समय मेरे पास बैठने की अपेक्षा कृष्ण के पिता से परिचित होने की उत्सुकता उसे अधिक परेशान कर रही थी। ललिता ने कहा—"तुम्हारे पास बैठ कर तुमसे बातें करने को मुझे बहुत समय मिल जायगा। पर उनसे इसी वक्त परिचय होने की जरूरत है।"

ललिता से मैं कह सकती थी कि वे काम से कहीं गये हैं, या परदेश गये हैं—लौटने मे दो-चार महीने की देर होगी,—इस तरह की बातें मैंने अनेकों से कही हैं। किन्तु ललिता से एक काल्पनिक कहानी कहने मे मुझे लज्जा होने लगी। होस्टल मे ललिता और मैं एक साथ कमरे मे रहती थी। उस कमरे में, हम दोनों का प्रथम यौवन—कल्पना के अनगत कितने ही किस्से, हमारे अविकसित चित्त की गुप्त इच्छाओं के कितने ही अकथित विलाप अन्धकार मे खो गये हैं—वे सब ललिता को देखकर, चित्त के द्वार पर आकर कलरव करने लगे। उस समय

ललिता मेरी एकमात्र प्रिय सखी थी।...ललिता से मैं झूठ नहीं क[र]
सकी। मैंने कहा—"ललिता, मेरी शादी नहीं हुई है—फिजूल [तु]
हठ कर रही हो! "

ललिता विस्मय से अवाक् हो गई। पहले उसने सोचा कि मजा[क]
है, पर देर तक मेरे चेहरे की ओर देखते रहने पर भी जब उसने को[ई]
परिवर्त्तन नहीं देखा, तब क्षुब्ध ललिता ने केवल इतना ही पूछा—
"पर कृष्णा ?"

मैंने कहा—"इसीके बारे मे सुनाने के लिये तुमसे आने को कहा
था। कविता के शब्दों मे कहने पर—वह मेरे बन्दी नारीत्व का फ[ल]
नही, मेरे देह-तीर्थ की मुक्ति का फूल है। सीधी-सादी भाषा मे—शादी
बिना किये ही मैं इसे पा गई!"

ललिता फिर कुछ क्षणों तक बोल नहीं सकी, मेरे प्रति समवेदना
से उसके ओठ कॉप रहे थे। लगा कि इन क्षणों मे हम दोनो के बीच
अतीत मर गया है, और उसके शव को अपने सामने रख कर हम दोनों
विलाप कर रहे हैं! कुछ मिनट चुपचाप व्यतीत हो जाने के बाद
ललिता ने कहा—"मीनाक्षी! क्या तुमने जान-बूझकर यह कलङ्क सिर
पर लाद लिया ?"

ललिता के उत्तर मे कहा था, "ठीक-ठीक कह नहीं सकती, या क्या
कहने पर सही बात होगी, यह मैं सोच नहीं पाती।.. हॉ, कभी उसे पा[ने]
को कामना जरूर की थी—अपने प्रथम जागरण के सारे आवेग औ[र]
उत्तेजन से उसे पाने की कामना की थी, कविता की भाषा मे कह[ने]
पर—मेरे उस समय के स्वप्न मे मैं केवल पैरों की आहट सुनती थी।
एक दिन वह मेरे पास आया। 'एपोलो' की-सी शक्ल—सूर्योदय की
तरह उज्ज्वल। फिर आत्म-समर्पण की बारी आई। पर तब कौन
जानता था कि किसीके हृदय को बन्दी करके रक्खा नहीं जा सकता,
हम लोग जिसे पूरी तरह जानने का अहकार करते हैं, शायद हम
लोग उसका कुछ भी नहीं जानते हैं।"

घायल स्वर से ललिता ने कहा—"आखिर वह आदमी खिसक गया ?"

"खिसक जाना ही उसका तरीका था। ऐसे बहुतों के मन पर अपने पैरों का निशान छोड़कर वह चला गया था—यह सब मुझे पीछे मालूम हुआ; पर तब बहुत देर हो गई थी, तब मेरे बीच नई सृष्टि का बीज लग गया था..."

"फिर...?"

"फिर इस कृष्णा को पा गई। एक कन्या-पाठशाला में पढ़ाती थी, पास कुछ रुपये थे—किसी बात की कठिनाई नही हो पाई।"

ललिता स्तब्ध भाव से बैठी रही। फिर उसने सहसा पूछा—"उस आदमी का नाम जानने का मुझे बड़ा कुतूहल हो रहा है, मीनाक्षी! नहीं बताओगी ?"

ललिता से उस आदमी का नाम नहीं बताया और कभी भी नहीं बताऊँगी। इस कारण नहीं बताऊँगी कि तुम्हे लिये वह मन ही मन जिस स्वर्ग की रचना कर रही है, उसे तोड़ कर मैं अपना अपराध बढ़ाना नहीं चाहती।

ललिता से तुम्हारे जीवन की (latest) शक्ल—यानी विवाहित जीवन का कुछ परिचय पा गई, ठीक-ठीक परिचय नहीं, जरा आभास कह सकती हूँ। सुना कि महाबालेश्वर पहाड़ पर छोटा बंगला किराये पर लेकर तुम दोनों के विवाहित जीवन का प्रथम अध्याय बीता है। सुना कि तुम उसे अपनी सारी देह और मन से सदा घेरे रहते हो, एक क्षण भी उसे छोड़ कहीं नहीं जाते हो—केवल दफ्तर जाने के सिवाय। जीवन में यदि दफ्तर और काम-धंधा नहीं रहता तो प्रेम करने का रास्ता और भी सुगम हो जाता, यह मैं अपने मन से स्वीकार करती हूँ और मेरे ख्याल में तुम भी शायद केवल इस बात में मुझसे सहमत हो। मैं देख रही थी—तुम्हारी बात कहते समय उसके सांवले

गर्व और सुख की लाली चमक उठती थी ! किन्तु जानते हो, मुझे क्या लग रहा है ? मुझे लगता है कि ललिता जिस वस्तु को प्रेम सोच कर बहुत ही सुख और तृप्ति अनुभव कर रही है, वह तुम्हारे सारे जीवन के अप्रिय अनुभव का श्राप है ! तुम ललिता पर विश्वास नहीं करते हो, तुम विश्वास कर ही नहीं सकते हो, इसीलिये तुम उसे छाया की भाँति रात-दिन घेर कर रखना चाहते हो। उसे एक क्षण भी अकेला रख कर तुम्हे चैन नहीं है—यह बात ललिता चाहे न समझे, लेकिन मैं समझती हूँ। तुमने सदा सुन्दर स्त्रियों के लिये पागल रह कर, आखिर ललिता की भाँति एक साधारण, शान्त और साँवली युवती से क्यों शादी कर ली ! इसका कारण चाहे किसी के निकट अज्ञात रहे, मुझे सोच लेने मे देर नहीं लगी है। अनेक हीरा-मोती चुग कर अब निराभरणता के प्रति तुम्हारा मोह हो गया है, क्योंकि हीरा-मोती की चोरी हो जाने का डर रहता है, और इसमे सो नहीं है, बात सही है न ? तुम मेरी बात की बेपरवाही कर सकते हो, पर और भी अनेक युवतियाँ तुम्हारी रुचि का इस प्रकार पतन देखकर, बताओ तो, क्या कहेंगी ?

अपने पुत्र के नाम से क्यों मैंने तुम्हारे नाम का मेल रक्खा, यह कह पत्र समाप्त करूँगी। मेरे सामाजिक जीवन को कुत्सित करके, मेरे बच्चे के जिस परिचय को छिपाने के लिये तुम भाग गये थे, मैं तुम्हें उसके नाम के भीतर से उसी परिचय को छोडे जा रही हूँ। दस-पन्द्रह वर्ष के पश्चात्, यदि कभी तुम्हारे प्रथम यौवन की शरीरी मूर्त्ति की भाँति किसी युवक से तुमसे भेंट हो जाय और तुम कौतूहल से यदि उसका नाम जानना चाहो, तो तुम उसको जान सकोगे। माता के जीवन का सबसे भारी पाप है—अपने बच्चे की मृत्यु चाहना। जब तक मैं जीवित रहूँगी, मैं यही कामना करूँगी; क्योंकि दुनिया में वह तुमसे और मुझसे भी अभागा है, किन्तु मेरी वह कामना अगर उसे

मृत्यु देती है, तो उस मृत्यु का श्राप केवल मुझ पर ही न पडे। यही तुम पर मेरा सबसे भारी श्राप है।

तुम्हे इससे अधिक कठोर बात कहना है या नहीं, यह मैं सोच नही पा रही हूँ। डरो मत कि यह पत्र अदालत में तुमसे खुराकी का दावा करने की भूमिका है; मैं एक कन्या-पाठशाला मे पढ़ाती हूँ, और जो मिलता है उससे कृष्ण को कभी भी तुम्हारे निकट जाकर भिक्षा नहीं माँगनी पडेगी।

× × ×

जब पत्र समाप्त हुआ तब दफ्तर के सब लोग चले गये थे। चपरासी लोग खिड़की-दरवाजे बन्द कर रहे थे।

श्रीकृष्ण ने घटी बजाकर 'छोकरे' को एक गिलास ठण्डा जल लाने का हुक्म दिया, फिर जेब से रूमाल निकाल कर मुँह को पोछ लिया। उसके चौडे माथे पर ढेर सारी रेखायें पड़ गई थी, चेहरा मलीन और बहुत ही गम्भीर हो गया था।

पन्द्रह मिनट के बाद पत्र के टुकडे-टुकडे करके वह कुरसी पर से उठ पडा। लेकिन उसे ललिता के सामने जाने में डर लग रहा था। यदि मीनाक्षी ललिता को न जानती होती! शायद ललिता सब समझ गई है; पर फ़िजूल समझ कर मीनाक्षी से या उससे कहने की जरूरत नहीं समझी होगी। ललिता भीरु और शान्त प्रकृति की है! इस क्षण मे ललिता को अपने सामने पाने पर श्रीकृष्ण कदाचित् उसका गला घोंट कर सदा के लिये उसे चुप कर देता; किन्तु इस समय ललिता बहुत दूर पर है और जब वह कलेवा और चाय हाथ में लिये उसके सामने आ खडी होगी, तब शायद श्रीकृष्ण से कुछ भी नहीं कहा जायगा।

दफ्तर से बाहर निकलने की सब सीढियों से स्वप्न-चालित-सा उतर कर श्रीकृष्ण सड़क पर आ पहुँचा। वह 'ट्राम' गाड़ी से ही घर लौटता

है, लेकिन उसने देखा कि जाने कब वह एक किराये की मोटर पर बैठ गया है। बहुत दिनों के पश्चात् श्रीकृष्ण की टैक्सी हार्नबी रोड पर के एक प्रसिद्ध 'पानालय' के सामने रुकी। वह 'ह्विस्की' के कई छोटे गिलास पीकर फिर 'टैक्सी' पर आकर बैठ गया...

श्रीकृष्ण ने मोटर ड्राइवर से समुद्र के किनारेवाली सड़क पर मोटर धीरे-धीरे चलाने के लिये कहा। वाट्सन होटल के बगल से 'टैक्सी' चर्च गेट की ओर मुड़ गई।

उस समय बम्बई नगरी रात्रि की सुन्दर नाचनेवाली की तरह मनोहर थी। एक तरफ हल्के कुहरे का आवरण पड़ता हुआ काला समुद्र था और दूसरी ओर प्रकाश की दीपावली।.. श्रीकृष्ण दस बजे तक समुद्र की हवा खाता रहा...

फिर घर आया।

किन्तु ललिता के व्यवहार में कुछ भी फर्क नहीं दीखा।

प्रति दिन की तरह मीठी मुसकान के साथ उसने पूछा, "आज इतनी देर हो गई ?"

श्रीकृष्ण ने शीघ्रता से कपडे उतारने के कमरे की ओर जाते हुये कहा, "जरा काम था। आज मैं नहीं खाऊँगा—एक जगह भोजन कर आया हूँ।"

× × ×

रात्रि—जो रात्रि मनुष्य को सारी दीनता से छिपाती है, जो रात्रि मनुष्य की सारी दीनता प्रकट करा देती है।

सफेद फूल की भाँति ढेर सारी चाँदनी पलंग पर आ गिरी थी। श्रीकृष्ण ने काँच की खिडकी बन्द कर दी। फिर भी निर्वाक् चाँदनी नींद में बेहोश ललिता के शिथिल सर्वांग पर लोट गई।

ललिता के बाल अस्तव्यस्त हो गये थे, बालों पर के कुछ फूल गिर कर तकिये पर बिखर गये थे। उसका पूर्ण यौवन चाँदनी में खिल उठा था। ओंठों के चारों ओर पसीने की बूँदें चमक रही थीं...

उसने अब तक अनेकों का प्रथम प्रेम लेकर खेल किया है, यह कौन कह सकेगा कि ललिता ने भी उसे उसी प्रकार धोखा नहीं दिया ? नही तो उसके मन में मीनाक्षी और श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में रत्ती भर भी सन्देह क्यों नहीं जाग्रत हुआ ? क्यों उसने एक भी बात नहीं कही, क्यों उसने यह नही कहा कि तुम कपटी हो, धोखेबाज हो...

वह ललिता के पलग से उठ कर एक दूसरे पलग पर लेट गया। यहाँ चाँदनी नहीं थी। नही, उसे चाँदनी नहीं चाहिये। जब नींद उसके होश को ढँकने आती, तभी वह अपने ओठों पर अनेक ओठों के चुम्बन की गर्मी अनुभव करता; अनेक भूली देहों के स्पर्श से उसकी नींद दूर—काफी दूर सरक जाती .

इसी प्रकार भोर हो गया।

ऐसी जाने कितनी रात्रियाँ उसके जीवन की घड़ियों को विषैली कर देंगी, सोच कर श्रीकृष्ण डर के मारे चौंक उठा। सान्त्वना पाने के लोभ से अपनी आँखों मे दो आँसू की बूँदे लाने की दुर्बलता भी उसमें आ गई थी; और उसके लिये जो रो रही हैं और जीवन भर रोयेंगी, उनकी बेवकूफी याद करके वह उसी अँधेरे मे 'हो-हो' करके हँस उठा...

हवलदार का प्रेम

क़रीब पच्चीस साल पहले अपने मामा की बारात में हम लोग कानपुर जिले के घाटमपुर गाँव में गये थे। मेरी उम्र उस समय पन्द्रह सोलह साल की थी। वहाँ एक वृद्ध सज्जन से क़िस्सा सुना था। वह कोई काल्पनिक कहानी नहीं है। पाठकों के मनोरंजन के लिये उसे ज्यों का त्यों सुना रहा हूँ—

वृद्ध सज्जन ने यों सुनाया था :—

मुझे अच्छी तरह याद है, यह घटना कानपुर में १८५६ ई० में हुई थी। वहाँ के बूढे अभी तक कहते हैं—उस समय उस घटना से वहाँ बडा शोर मच गया था। अभी तक घने पेड़ों से ढँकी उस सड़क पर से चलते हुये लोग धीमे स्वर से उस घटना को कहते हैं।

उस शाम को, पता नहीं क्यों, मैं बहुत उदास हो गया था। तम्बाकू पीकर उदासी को दूर करने की कोशिश की—पर तम्बाकू कड़वी लगी, कोई मजा न मिला। कमरे के दरवाजे और खिडकियों से—चारों तरफ से ही मानो एक अवसाद-भरी हवा चल रही थी। इसी समय द्वार के निकट किसी के पैरों की आहट सुन पाई। दिक होने के भाव से उठ कर उस ओर गया।

आगन्तुक मेरा मित्र सुन्दरसिंह था। शीघ्रता से उसने कमरे में प्रवेश किया। सुन्दरसिंह का रंग-ढग देखकर मैं चकित हो गया। क्योंकि, उसकी प्रकृति वैसी नहीं थी। वह ज़रा धीमी चाल का आदमी था। कमरे में आते ही कह उठा—"तुम घर पर हो, देखकर मुझे चैन मिला!"

दरवाज़ा बन्द करके मैंने पूछा—"क्यों, मामला क्या है ?"

"कोई खास बात तो नहीं है—मैं डर रहा था कि कहीं तुम बाहर तो नहीं चले गये। ख़ैर तुम्हें देख पाकर मुझे चैन मिला !"

"आओ, बैठो ! खुश क़िस्मती है कि तुम आ गये, बड़े मौके पर आये हो। मेरा चित्त बहुत उदास हो रहा था। अब तुमसे दो घड़ी बात करके तनिक सुखी होऊँगा।"

हम दोनों बैठ गये।

× × ×

सुन्दरसिंह घुड़चढ़ी सेनादल का एक हवलदार था। उम्र उसकी कोई इक्कीस-बाईस साल की थी। यह युवक कुछ कल्पना-प्रिय था। वह कल्पना करता था कि दुनिया भर की युवतियाँ उसके लिये पागल रहती हैं; और जब वह चर्स की एक चिलम पी लेता था, तब तो कहना ही क्या ! तब उसके चेहरे पर एक बड़ी कोमल विह्वलता आ जाती थी। और तब वह सोचता था कि उसके उस मनोहर भाव को देखकर कोई भी उसकी ओर आकर्षित हुये बिना रह नहीं सकती।

सुन्दरसिंह की शक्ल और चेहरा बुरा नहीं था। साधारण ऊँचाई का आदमी था; चेहरे पर लाली थी; ओठ भी लाल-लाल थे, मोछें कुछ अधिक घनी थीं; और आँखों में एक विशेष उज्ज्वलता थी।

जब उसने कमरे में प्रवेश किया, तब चेहरे पर कोई परिवर्त्तन नहीं लक्षित हुआ—चेहरा देखकर समझ नहीं सका कि उसके चित्त में कोई घबराहट आई है, केवल मुझे लगा कि वह मानो कुछ थका हुआ है। लेकिन सुन्दरसिंह में वह पहले का-सा गर्वित स्त्री-विजयी भाव मानो देख नहीं पाया।

मैंने पूछा—"क्या हाल है ?"

"हाल क्या कहूँ भाई—यह देखो, कानपुर से आ रहे हैं।"

"कानपुर से ?"

"हाँ, कानपुर से। चालीस मील लम्बे रास्ते भर घोड़ा भगा हुआ आ रहा हूँ।"

"भगाता हुआ ? तो क्या तुम वहाँ से भागे आ रहे हो ?"

"हाँ, बात कुछ-कुछ ऐसी ही है ?"

"मामला क्या है, यह सुनाओ। आखिर सुनूँ तो कि बात क्या है। तुम्हारे आर्थिक विषय में..."

"अरे, रुपये-पैसे की बात होती तो मैं इतना परेशान होता ?—भला कोई ऐसी मामूली बात पर परेशान होता है।"

"तो कहते क्यों नहीं हो ? जल्दी कह डालो। तब क्या बात है। तुम समझ नहीं पा रहे हो कि मेरे दिल मे तुमने कितना कौतूहल कर दिया है। क्या किसी झगड़े या मार-पीट की बात है ?"

"मार-पीट किस लिये ?"

"हाँ, सो सही है। मार-पीट करने से तुम्हे फायदा ही क्या है, पर अगर तुम्हारे विचार में यह एक दिल-बहलाव हो—इसके सिवाय, क्या हो जाय—"

"नहीं, झगड़े-बगडे की बात नहीं हुई।"

"तब क्या बात हुई ? तब क्या बात हुई ? कहते क्यों नहीं।"

"मज़ाक न करो, यार !"

"भला मैं मजाक कर रहा हूँ !"

"आजकल का रंग-ढंग मुझे कुछ पता नहीं है भाई—मुझ पर जो बीती है, सो मैं ही जानता हूँ !"

"आओ जी, एक चिलम पी लें, तुम्हारी तबीअत बहल जायगी।"

"नहीं यार, आज मैं एक दम भी नहीं मारूँगा।"

"तब तो दीख रहा है कि कोई गहरी बात हो गई है। मैंने तुम्हें कभी भी इतना चिन्तित नहीं देखा।"

"मैं बहुत ही वेवकूफ हूँ, इसीलिये कुछ भी नहीं समझ पा रहा इसी कारण तुम्हारे पास भागा हुआ आया। तुम बहुत अक्लमन्द, तुम शायद इस घटना का मतलब बता सकोगे। यह घटना मैं एक क्षण के लिये भी भूल नहीं पा रहा हूँ।"

× × ×

"तुम से पहले ही एक बात कह दूँ। कानपुर की जानकी बाई का नाम तुमने सुना है न? उसकी लडकी से मेरा प्रेम हो गया है.."

"हूँ! मुझे सन्देह था कि अपनी इस दुर्बलता को मुझे नहीं बताओगे।"

"तुम अगर इस तरह मज़ाक करने लगो तो.."

"नहीं, हवलदार साहब, बस अब कुछ न कहूँगा, मैंने अपना मुँह बन्द कर लिया। अब कहते जाओ।"

"मेरी यह प्रेमिका बहुत खूबसूरत है; और उस पर मेरा गहरा मोह भी हो गया है, यह भी तुम्हारे निकट मैं स्वीकार कर ले रहा हूँ।"

तीन दिन की बात है, हम लोग थोडी देर के लिये छुट्टी पा गये थे; छुट्टी का समय कैसे बिताऊँ यह निश्चय न कर पा कर, मैं और मेरी पल्टन के सूबेदार—मेरे दोस्त, हम दोनों अपनी बैठक से निकल पडे। गगाजी के किनारे वाली सडक से चलने लगे। चलते-चलते रात हो गई। अँधेरा बढ चला। तिस पर इस जाडे के मौसम में नदी से कुहरे ने उठ कर अँधेरे को और भी गहरा कर दिया। उस दिन का-सा इतना ठोस अँधेरा मैंने कभी भी नहीं देखा है।

मेरे मित्र, यशवन्तसिंह ने ठढी हवा से कुछ बेचैन होकर कहा—'दोस्त, क्या तुम्हे इतनी गर्मी लग रही है कि इतनी ठढ में गंगा किनारे घूमने आये हो? मुझे तो यह टहलना अच्छा नहीं लग रहा है..

चलो एक काम करें—उस दूकान में जाकर एक गाँजे की दम लगा लें।'

मैंने कहा—'नहीं, मैं नहीं पिऊँगा। मुझे पार्वती से मिलना है, (मेरी प्रेमिका का नाम पार्वती है) क्या तुम मेरे साथ चलोगे?'

यशवन्तसिंह ने कहा—'चलो। एक युवती के साथ कुछ समय बिताना किसे अच्छा नहीं लगता है?'

शहर के अन्त मे वह युवती अपनी माँ के साथ रहती थी। हम लोग सीधे उसी तरफ जाने लगे।

काफी रास्ता चलना था, लेकिन वहाँ एक बार पहुँच जाने पर, अगीठी के पास बैठ कर थकावट दूर की जायगी, इस आशा से हम लोग वहाँ पहुँचे। परन्तु दुर्भाग्य से हम लोगों की आशा सफल नहीं हुई।

पार्वती घर में नहीं थी, कहीं गई हुई थी। नौकरानी ने कहा—'माँ-बेटी शहर को गई हैं—किसी के घर से बुलाहट आई थी। रात को भी वे शायद वहीं रहेंगी।'

यह बुरी खबर सुन कर यशवन्तसिंह कह उठा—'सब गुड़ गोबर हो गया! चलो, अब उस गाँजे की दूकान में ही चलें।'

मैंने कहा—'अब उस गगा के किनारेवाली सड़क से नहीं जायँगे—उससे बड़ा चक्कर पड़ जाता है। इसी सामनेवाली पेड़ों से ढँकी सड़क से चले चलो—जल्दी पहुँच जायँगे, यह सीधी गई है।'

हम लोग चल पड़े।

गहरा अंधकार था; तिस पर घना कुहरा! सौ क़दम बढ़े होंगे कि देखा कि मेरा मित्र ग़ायब हो गया है। वह दाहिने गया, या बायें, कुछ भी पता नहीं लगा। बस, इतना ही जान सका कि हम दोनों

अलग हो गये हैं। हम लोगों के बीच जाने क्या एक व्यवधान आ पड़ा है।

उसका नाम लेकर पुकारा, पर जवाब नहीं मिला।

मैं उसके बारे में सोचता हुआ उसी दूकान की ओर बढ़ चला। सहसा किसी चीज से कुछ ठोकर-सी लगी। झुक कर देखने लगा कि क्या है। क्या कुत्ता है? या कोई पत्थर है, या कोई मनुष्य है? पता नहीं क्या है!—पर यह तो हिल रहा है! आँखें फैला कर देखने लगा। अरे, यह तो स्त्री है! भिखारी की तरह पेड़ के नीचे बैठी है; जैसे उसे जाड़े से कोई कष्ट नहीं है—निर्जनता से कोई डर नहीं है! मेरी तरफ ध्यान उसका नहीं था।

'यहाँ बैठी क्या कर रही हो, क्या बीमार पड़ गई हो?'

उसने क्षीण स्वर से उत्तर दिया—'नहीं।'

'खुली जगह में बैठने लायक मौसम तो यह नहीं है।'

'चाहे यहाँ, चाहे और कहीं, मुझे कुछ भी अन्तर नहीं लगता।'

गहरी रात्रि है, घना अँधेरा है, कड़ाके की सर्दी पड़ रही है—ऐसे समय में अकेली इस जगह तुम क्यों हो? ऐसी आश्चर्यजनक बात तो ..'

'सभी समय मेरे लिये बराबर है।'

अगर तुम मुझे इजाजत दो, तो मैं तुम्हें घर तक पहुँचा दूँ'—मैंने हृदय के कुछ आवेग से यह बात कही।

उसने कहा—'अच्छा।' और फौरन ज़मीन पर से उठ पड़ी और मेरे साथ-साथ चलने लगी।

इस अद्भुत घटना के पहले से ही मेरे मन में एक चंचलता आ गई थी। इस करारी ठंड में मुझे थर-थर काँपना चाहिये था, लेकिन मेरे माथे पर पसीना जमने लगा।

क्या सोचूँ, कुछ भी नहीं समझ सका। सब कुछ अद्भुत और स्वप्नमय था। कुहरे से सब ढँका हुआ था। यह स्त्री कौन है? अभी तक उसका मुँह नहीं देख पाया हूँ। देखने पर क्या विस्मय और आनन्द होगा? इसका स्वर जैसा मीठा है, इसका मुँह भी क्या वैसा ही सुन्दर होगा? इस उपन्यास के काबिल घटना का परिणाम जाने क्या होगा?

—पता नहीं, जाने कहाँ जाकर इसका अन्त होगा! सुख की आशा से हृदय नाच उठा, सौन्दर्य की प्यास क्रमशः प्रबल हो उठी—एक शब्द मे .अरे बेवकूफ! ..''

''हवलदार साहब, अपने को इस तरह धिक्कार क्यों रहे हो?'' मैं कह उठा।

सुन्दरसिंह ने कहा—''क्यों, यह मैं नहीं जानता। मेरी बातें सुनते जाओ। कुछ देर के बाद तुम स्वयं जान जाओगे।''

वह स्त्री मुझसे दो-तीन कदम आगे रास्ता दिखाती हुई चलने लगी। मैं चकित होकर अनमने भाव से उसका पीछा कर रहा था। आखिर एक मकान से लगी खुली जमीन में आ पहुँचे।...पर उसका मुख कैसे देख पाऊँ!—गहरा अँधेरा था, तिस पर घना कुहरा घेरे हुये था—और फिर वह घूँघट काढे हुई थी। समझ सकते हो यार, मुँह ही असली चीज़ है।

पाँच मिनट के बाद वह रुक गई। अगर पूछो कि कौन-सी सड़क थी, मैं उस समय तक कुछ भी नहीं जान सका था। मैं और किसी विषय में न सोच कर, उसके निकट आकर खड़ा हुआ।

''मेरा यही घर है, क्या आप भीतर आना चाहते हैं?''

ऐसे प्रस्ताव की आशा मैंने कभी भी नहीं की थी, और उसने ऐसे शान्त और गम्भीर भाव से मुझसे ये बातें कहीं कि मैं आग्रह के साथ राजी हो गया।

चित्त में गहरा कौतूहल जाग्रत हो उठा था। मैंने सोचा, चाहे किस्मत में जो भी बदा हो, इस घटना का अन्त मुझे देखना ही पड़ेगा। उसका मुँह बिना देखे मैं उसे नहीं छोड़ूँगा।

वह अपरिचित स्त्री एक मकान के पास आई। एक जोर का शब्द मकान के भीतर प्रतिध्वनित हुआ, फिर किवाड़ खुल गये। द्वार के पास सफेद धोती-कुर्त्ता पहिने एक नौकर जलती मशाल हाथ मे लिये खड़ा था।

वह अपरिचित स्त्री सामने से रानी की तरह गर्व-भरे कदम फेंकती हुई चलने लगी और अपना पीछा करने के लिये मुझे उसने इशारा किया।

मशाल की रोशनी में देखा—उसकी सारी देह सफेद धोती से ढँकी थी। उसका मुँह घूँघट के भीतर छिपा था।

...तुम तो यार, मुझे जानते हो—मैं यमराज से भी डरता नहीं हूँ। पर मैं तुमसे सच कहता हूँ, उस समय मेरी देह सिहर उठी। मैंने बहुत कठिनता से दिल में साहस लाकर घर में प्रवेश किया।

वह जिस कमरे में मुझे ले गई, वह कमरा असबाबों से सजा हुआ था। फर्श पर मोटा कालीन बिछा हुआ था—उस पर ज़रा भी पैरों की आहट नहीं होती थी। घड़ी पर मेरी निगाह पड़ी, देखा—दो प्रहर रात्रि बीत गई थी।

मालकिन के इशारे से एक नौकर कमरे में मोमबत्तियाँ जलाकर उप-छाया की तरह चला गया। हलकी, हवा से काँपती हुई रोशनी चारो तरफ बिखर गई।

मैं और केवल वह अपरिचित स्त्री। कमरे में और कोई नहीं था।

मैं स्तब्ध भाव से खड़ा रहा। पर अधिक देर तक खड़ा नहीं रहना पड़ा। उस स्त्री ने इशारे से मुझे अपनी बगल में बैठने के लिये कहा और फिर अपना घूँघट खोल दिया।

उसका मुँह देख कर मैं बिलकुल मोहित हो गया, मेरी आँखें चकाचौंध हो गईं। उस उज्ज्वल मुख को देखते ही पहले का सा भय काल्पनिक लगा और क्षण भर में वह सब जाने कहाँ गायब हो गया।

यार, मैं तुमसे क्या कहूँ—तुम उसे देवी कहो, दानवी कहो,—तुम चाहे कुछ भी कहो—पर मैंने ऐसी सुन्दर स्त्री जीवन में कभी भी नहीं देखी है!

अब जानना चाहते हो, हम लोगों क्या बीती? शपथ खाकर कहता हूँ, मुझे कुछ भी पता नहीं है। बस, मुझे सिर्फ इतनी ही याद है कि जब उसका हाथ दबाया, तब लगा—जैसे किसी पत्थर को दबा लिया है। और भी याद पड़ रहा है कि जिन आँखों की दृष्टि बड़ी मीठी थी, वे आँखें मानो स्थिर और अचल-सी रहीं; पर वह एक कोमल दृष्टि के साथ स्वाभाविक भाव से मेरी ओर देख रही थी। मुझे लगा, जैसे उसने मुझसे प्रेम किया है। उसके सामने घुटने टेक कर बैठ गया और उसके पैरों को हृदय से चिपका लिया। कब तक उसकी जाँघ पर सिर टेके बैठा रहा, यह मैं नहीं कह सकता। पर उस समय मुझे लग रहा था कि शायद जीवन भर इसी तरह रहूँगा। आनन्द से भरा जा रहा था—एक अज्ञात, किन्तु अपूर्व उन्माद मुझे मानो इस दुनिया की सीमा पार करके कहीं बहुत दूर ले जा रहा था। सहसा घड़ी ने एक बजाया।

इस निस्तब्धता के बीच घड़ी की रूखी ध्वनि बड़ी बुरी लगी। शीघ्रता से उठ पड़ा, क्यों, यह मैं नहीं जानता। पीछे वाली दीवार की ओर घूम कर देखा, जो सब बड़े-बड़े दर्पण लगे हुये थे, सभी सफेद कपड़े से ढँक गये थे, विचित्र रंगों के परदे भी सफेद हो गये थे; और मोमबत्तियाँ धीरे-धीरे बुझी जा रही थीं।

यह करामात देखकर मैं घबरा उठा ! मैं उस अपरिचित स्त्री को ढूँढने लगा—पर कोई भी नहीं था ! नौकर-चाकर ? वे भी नहीं थे ! मैं द्वार की ओर दौड़ा ! ..

सदर दरवाजा खुला था—मैं सड़क पर निकल आया। उस भुतहा मकान के भीतर कैसे घुसा और कैसे बाहर निकल आया, अब मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ।

× × ×

मेरा मुँह पसीने से भर गया था। पसीना पोंछने के लिये जेब से रूमाल निकालने लगा, पर देखा कि जेब में रूमाल नहीं है।

इस अद्भुत घटना का रहस्य क्या है, यह जानने की बड़ी इच्छा हुई, खुली हवा में आकर मेरे हृदय की चंचलता भी काफी दूर हुई; तब म्यान में से अपनी तलवार निकाली और उस रहस्यमय मकान की दीवार पर तलवार से एक गहरी लकीर बना दी, और जिस सड़क पर वह मकान था, उसे भी याद करके रक्खा।

तुम तो यार, समझ सकते हो कि ऐसी घटना के बाद कुछ आराम और निर्जनता की जरूरत है। इसीलिए सीधा अपने कमरे में जा पहुँचा।

दूसरे दिन, जब यशवन्तसिंह को यह अद्भुत घटना सुनाई, तो वह अविश्वास से हँसने लगा। जब मैंने उससे कहा कि उस मकान में तुम्हे ले जाऊँगा तो उसने मुझे पागल समझ लिया। खैर, बहुत कहने के बाद वह मेरे साथ चलने को राजी हुआ। मैंने इससे पहले एक अमिट लकीर बता दी थी, इसीलिये उस मकान को पहिचानने में मुझे कठिनता नहीं हुई।

पर कितने आश्चर्य की बात है, उस मकान के सामने जाकर देखा—खिड़कियाँ बन्द हैं, सदर दरवाजे में ताले लगे हैं। एक निगाह में मकान को देखते ही लगा कि वह बहुत दिनों से इसी तरह बन्द

उसका मुँह देख कर मैं बिलकुल मोहित हो गया, मेरी चकाचौंध हो गई। उस उज्ज्वल मुख को देखते ही पहले का भय काल्पनिक लगा और क्षण भर मे वह सब जाने कहाँ गायब हो गया।

यार, मैं तुमसे क्या कहूँ—तुम उसे देवी कहो, दानवी कहो, तुम चाहे कुछ भी कहो—पर मैंने ऐसी सुन्दर स्त्री जीवन मे कभी नहीं देखी है!

अब जानना चाहते हो, हम लोगो क्या बीती? शपथ खाकर कहता हूँ, मुझे कुछ भी पता नहीं है। बस, मुझे सिर्फ इतनी ही याद है कि जब उसका हाथ दबाया, तब लगा—जैसे किसी पत्थर को छू लिया है। और भी याद पड रहा है कि जिन आँखों की दृष्टि मीठी थी, वे आँखें मानो स्थिर और अचल-सी रहीं; पर वह एक कोमल दृष्टि के साथ स्वाभाविक भाव से मेरी ओर देख रही थी। मुझे लगा, जैसे उसने मुझसे प्रेम किया है। उसके सामने घुटने टेक कर बैठ गया और उसके पैरो को हृदय से चिपका लिया। कब तक उसकी जाँघ पर सिर टेके बैठा रहा, यह मैं नहीं कह सकता। पर उस समय मुझे लग रहा था कि शायद जीवन भर इसी तरह रहूँगा। आनन्द से भरा जा रहा था—एक अज्ञात, किन्तु अपूर्व उन्माद मुझे मानो इस दुनिया की सीमा पार करके कहीं बहुत दूर ले जा रहा था। सहसा घडी ने एक बजाया।

इस निस्तब्धता के बीच घडी की रूखी ध्वनि बड़ी बुरी लगी। शीघ्रता से उठ पडा; क्यो, यह मैं नहीं जानता। पीछे वाली दीवार की ओर घूम कर देखा, जो सब बडे-बडे दर्पण लगे हुये थे, सभी कपडे से ढँक गये थे, विचित्र रंगों के परदे भी सफेद हो गये थे; और मोमबत्तियाँ धीरे-धीरे बुझी जा रही थीं।

यह करामात देखकर मैं घबरा उठा! मैं उस अपरिचित स्त्री को ढूँढने लगा—पर कोई भी नहीं था! नौकर-चाकर? वे भी नहीं थे! मैं द्वार की ओर दौड़ा!..

सदर दरवाजा खुला था—मैं सड़क पर निकल आया। उस भुतहा मकान के भीतर कैसे घुसा और कैसे बाहर निकल आया, अब मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ।

× × ×

मेरा मुँह पसीने से भर गया था। पसीना पोंछने के लिये जेब से रूमाल निकालने लगा, पर देखा कि जेब मे रूमाल नहीं है।

इस अद्भुत घटना का रहस्य क्या है, यह जानने की बड़ी इच्छा हुई, खुली हवा मे आकर मेरे हृदय की चचलता भी काफी दूर हुई; तब म्यान मे से अपनी तलवार निकाली और उस रहस्यमय मकान की दीवार पर तलवार से एक गहरी लकीर बना दी, और जिस सड़क पर वह मकान था, उसे भी याद करके रक्खा।

तुम तो यार, समझ सकते हो कि ऐसी घटना के बाद कुछ आराम और निर्जनता की ज़रूरत है। इसीलिए सीधा अपने कमरे मे जा पहुँचा।

दूसरे दिन, जब यशवन्तसिंह को यह अद्भुत घटना सुनाई, तो वह अविश्वास से हँसने लगा। जब मैंने उससे कहा कि उस मकान मे तुम्हे ले जाऊँगा तो उसने मुझे पागल समझ लिया। खैर, बहुत कहने के बाद वह मेरे साथ चलने को राजी हुआ। मैंने इससे पहले एक अमिट लकीर बना दी थी, इसीलिये उस मकान को पहिचानने मे मुझे कठिनता नहीं हुई।

पर कितने आश्चर्य की बात है, उस मकान के सामने जाकर देखा—खिड़कियाँ बन्द हैं, सदर दरवाजे मे ताले लगे हैं। एक निगाह मे मकान को देखते ही लगा कि वह बहुत दिनों से इसी तरह बन्द

पड़ा है। दरवाज़ा खटखटाया; भीतर से कोई जवाब नहीं मिला। आखिर दिक़ और अधीर होकर शोर-गुल मचाने लगा। उसे सुन कर बगल के मकान के एक सज्जन ने अपनी
पूछा—'आप किसको ढूंढ रहे हैं?'

'इस मकान में एक स्त्री रहती.

'दो सालें हुई वे मर गई हैं,

'असम्भव है!'

'आप अगर इस मकान को लाला रामभरोसे के पास जाइये है।'

इस उपकार के लिये मैंने लाला की हवेली में गया। मैं लगाना चाहता था।

हम दोनों मित्रों को बैठे हुये हुक्का पी रहे थे। की इच्छा प्रकट की। यह सुन की खातिर की और कहा—' मकान के अन्दर जाकर अच्छी

'भीतर जाकर देख लिया है

'क्या! आपने भीतर जाकर विस्मय के साथ मेरी ओर देखा, खुद उस मकान के भीतर पैर नहीं ताली मेरे ही पास है, बक्स में जरूर मालकिन के मरने के पहले

'नहीं साहब, कल रात को मैं बजे तक एक युवती के साथ रहा

लालाजी ने सहसा मेरे मित्र की ओर एक बार देखा—यानी मेरा दिमाग ठीक है या नहीं, इस पर वे निश्चित हो लेना चाहते थे।

उनका भ्रम मै समझ गया, और उनको विश्वास दिलाने के लिये मकान के भीतर कहाँ क्या चीज रक्खी है यह बताने लगा।

फिर कहा—'लालाजी, आप मेरी बात का विश्वास नहीं कर रहे हैं, पर मैं इसका एक सबूत दे सकता हूँ। उस मकान से बाहर आने के समय मे अपना रूमाल फेंक आया था। मैं वहाँ जाकर अगर वह रूमाल पा जाऊँ—तो...?'

'तो आप जो भाव लगायँगे, उसी भाव मे मकान को बेंच दूँगा!'

मैंने यशवन्तसिंह के कान में कहा—'मुफ्त देने पर भी मैं नहीं लेता!'

लालाजी मेरे प्रस्ताव पर राजी हो गये। तीनों जने उस मकान के द्वार पर जा पहुँचे। लालाजी ने ताले पर लगी मकडे की जाली की ओर हम लोगों की दृष्टि आकर्षित करके कहा—'लौट चलियेगा?'

'नहीं।'

'पर यह दरवाजा छ. महीने के अन्दर एक बार भी नहीं खुला है।'

'मै आपसे निश्चित कह सकता हूँ कि कल रात को मैं इसी दरवाजे से होकर अन्दर गया था।'

अन्त मे हम लोगों ने मकान के भीतर प्रवेश किया।

सब कुछ बहुत दिनों से खाली पडे मकान की तरह था। दीवालें गन्दी हो गई थीं और उन पर मकड़ों की जाले लटक रहे थे; फर्श धूल से भरा था; गौरैयों ने चारों तरफ घोंसले बनाये थे; सीढ़ियों पर तिनके और पत्ते बिखरे पड़े थे। लेकिन उस बड़े कमरे मे जाते ही फर्श

पड़ा है। दरवाजा खटखटाया; भीतर से कोई जवाब नहीं मिला। आखिर दिक और अधीर होकर शोर-गुल मचाने लगा। उसे सुन कर बगल के मकान के एक सज्जन ने अपनी खिड़की पर खड़े हो कर पूछा—'आप किसको ढूँढ रहे हैं ?'

'इस मकान में एक स्त्री रहती...'

'दो सालें हुईं वे मर गई हैं, तब से यह मकान खाली पड़ा है।'

'असम्भव है !'

'आप अगर इस मकान को खरीदने की इच्छा से आये हैं, तो लाला रामभरोसे के पास जाइये—चौराहे पर उनकी बड़ी-सी हवेली है।'

इस उपकार के लिये मैंने उनको सलाम किया। फिर उसी दम लाला की हवेली में गया। मैं किसी भी तरह इस रहस्य का पता लगाना चाहता था।

हम दोनों मित्रों को नौकर ऊपर बैठक में ले गया। लाला बैठे हुये हुक्का पी रहे थे। उनसे मैंने उस बन्द मकान को खरीदने की इच्छा प्रकट की। यह सुन कर, बहुत खुश होकर उन्होंने हम लोगों की खातिर की और कहा—'सौदा बहुत अच्छा है; पर अगर आप मकान के अन्दर जाकर अच्छी तरह से उसे देख लें...'

'भीतर जाकर देख लिया है।'

'क्या ! आपने भीतर जाकर देखा है !' यह कह कर उन्होंने विस्मय के साथ मेरी ओर देखा, छः महीने से ऊपर हुआ होगा मैंने खुद उस मकान के भीतर पैर नहीं रक्खा है—और उस मकान की ताली मेरे ही पास है, बक्स में बन्द है...क्षमा करेंगे, जनाब, आप जरूर मालकिन के मरने के पहले भीतर गये होंगे !'

'नहीं साहब, कल रात को मैं भीतर गया हूँ—कम से कम दो घण्टे तक एक युवती के साथ रहा हूँ।'

लालाजी ने सहसा मेरे मित्र की ओर एक बार देखा—यानी मेरा दिमाग ठीक है या नहीं, इस पर वे निश्चित हो लेना चाहते थे।

उनका भ्रम मैं समझ गया, और उनको विश्वास दिलाने के लिये मकान के भीतर कहाँ क्या चीज रक्खी है यह बताने लगा।

फिर कहा—'लालाजी, आप मेरी बात का विश्वास नहीं कर रहे हैं, पर मैं इसका एक सबूत दे सकता हूँ। उस मकान से बाहर आने के समय मैं अपना रूमाल फेंक आया था। मैं वहाँ जाकर अगर वह रूमाल पा जाऊँ—तो...?'

'तो आप जो भाव लगायँगे, उसी भाव मे मकान को बेच दूँगा!'

मैंने यशवन्तसिंह के कान मे कहा—'मुफ्त देने पर भी मैं नही लेता!'

लालाजी मेरे प्रस्ताव पर राजी हो गये। तीनों जने उस मकान के द्वार पर जा पहुँचे। लालाजी ने ताली पर लगी मकडे की जाली की ओर हम लोगों की दृष्टि आकर्षित करके कहा—'लौट चलियेगा?'

'नहीं।'

'पर यह दरवाजा छः महीने के अन्दर एक बार भी नहीं खुला है।'

'मैं आपसे निश्चित कह सकता हूँ कि कल रात को मैं इसी दरवाजे से होकर अन्दर गया था।'

अन्त मे हम लोगों ने मकान के भीतर प्रवेश किया।

सब कुछ बहुत दिनों से खाली पडे मकान की तरह था। दीवाले गन्दी हो गई थीं और उन पर मकड़ों की जाले लटक रहे थे, फर्श धूल से भरा था, गौरैयों ने चारों तरफ घोसले बनाये थे; सीढियों पर तिनके और पत्ते बिखरे पडे थे। लेकिन उस बडे कमरे मे जाते

पर पडे हुए मेरे रूमाल ने सब की दृष्टि आकर्षित की। रूमाल ' के पास पड़ा हुआ था। ..

जो कुछ हुआ था, यार, सब कुछ तुम से कह दिया, अब तु अपनी राय कहो!"

मैंने कहा—"हवलदार, क्या कभी भूत तुम पर सवार हुआ था?"

"यह मुझे नहीं मालूम है।"

"क्या तुम. .कैसे प्रकट करूँ! ..अपने मित्र के साथ छावनी जब निकले थे—तब तुमने दो-एक दम लगाई थी?"

"नहीं, मुझे तो याद नहीं पड रहा है।"

इसके छः महीने बाद मुझे खबर मिली कि हवलदार सुन्दरसिं की मृत्यु हो गई है।

कहानी और जीवन

साहित्य में जितनी सुन्दर कहानियाँ हैं, सभी कोई न कोई अत्याचार, अपराध या अन्याय की घटनाएँ लेकर लिखी गई हैं, और उन कहानियों को सजीव करके रक्खा है—पात्र-पात्री के जीवन के दुःख, वेदना या पश्चाताप ने। क्या कोई यह कह सकता है कि सुख और सौभाग्य को लेकर भी कहानी लिखी जा सकती है? हाँ, लिखी तो जा सकती है, पर वह कहानी कुछ ही क्षण में नीरस हो उठती है और अवसाद ला देती है। जीवन में सुख और सौभाग्य भले ही अति मधुर और लोभनीय वस्तु हों, पर 'कहानी' और 'उपन्यास' मे उनका स्थान नहीं के बराबर-सा है। नमूने के तौर पर एक कहानी सुना रहा हूँ—इससे अपना वक्तव्य काफी साफ़ हो जायेगा।

—कोयल की कूक कानो में पहुँचते ही जब उसकी नींद टूटी तब उषा का स्निग्ध प्रकाश चारों ओर फैल गया था। खुली खिडकियो से हलकी-हलकी मीठी हवा आकर उसके सर्वाङ्ग में पुलक भर दे रही थी। नौकर से चाय लाने के लिये कह कर, गुनगुना कर आनन्द गाने लगा।

कुछ देर मे, नौकर चाय और बिस्कुट टेबिल पर रख गया।

आनन्द ने चाय पीकर सन्तोष के साथ एक सिगरेट सुलगाई। इसी समय नौकर हाथ में एक चिट्ठी लिये आया। फौरन उससे लिफाफा लेकर खोल डाला और पत्र पढने लगा। उस पत्र को पढ़ते-पढते उसका चेहरा कुतूहल और आनन्द से चमक उठा। पत्र में यह लिखा था :—

पर पड़े हुए मेरे रूमाल ने सब की दृष्टि आकर्षित की। रूमाल प
के पास पडा हुआ था। .

जो कुछ हुआ था, यार, सब कुछ तुम से कह दिया, अब तु
अपनी राय कहो !"

मैंने कहा—"हवलदार, क्या कभी भूत तुम पर सवार हुआ
था ?"

"यह मुझे नहीं मालूम है।"

"क्या तुम.. कैसे प्रकट करूँ !...अपने मित्र के साथ छावनी से
जब निकले थे—तब तुमने दो-एक दम लगाई थी ?"

"नहीं, मुझे तो याद नही पड़ रहा है।"

इसके छः महीने बाद मुझे खबर मिली कि हवलदार सुन्दरसिंह
की मृत्यु हो गई है।

कहानी और जीवन

साहित्य में जितनी सुन्दर कहानियां हैं, सभी कोई न कोई अत्याचार, अपराध या अन्याय की घटनाएँ लेकर लिखी गई हैं, और उन कहानियों को सजीव करके रक्खा है—पात्र-पात्री के जीवन के दुःख, वेदना या पश्चाताप ने। क्या कोई यह कह सकता है कि सुख और सौभाग्य को लेकर भी कहानी लिखी जा सकती है? हां, लिखी तो जा सकती है, पर वह कहानी कुछ ही क्षण में नीरस हो उठती है और अवसाद ला देती है। जीवन मे सुख और सौभाग्य भले ही अति मधुर और लोभनीय वस्तु हो, पर 'कहानी' और 'उपन्यास' में उनका स्थान नहीं के बराबर-सा है। नमूने के तौर पर एक कहानी सुना रहा हूँ—इससे अपना वक्तव्य काफी साफ हो जायेगा।

—कोयल की कूक कानों में पहुँचते ही जब उसकी नींद टूटी तब उषा का स्निग्ध प्रकाश चारों ओर फैल गया था। खुली खिड़कियों से हलकी-हलकी मीठी हवा आकर उसके सर्वाङ्ग में पुलक भर दे रही थी। नौकर से चाय लाने के लिये कह कर, गुनगुना कर आनन्द गाने लगा।

कुछ देर में, नौकर चाय और बिस्कुट टेबिल पर रख गया।

आनन्द ने चाय पीकर सन्तोष के साथ एक सिगरेट सुलगाई। इसी समय नौकर हाथ में एक चिट्ठी लिये आया। फौरन उससे लिफाफा लेकर खोल डाला और पत्र पढ़ने लगा। उस पत्र को पढ़ते-पढ़ते उसका चेहरा कुतूहल और आनन्द से चमक उठा। पत्र में यह लिखा था :—

प्रिय आनन्द,

आशा है कि तुम्हारा नाम मुझे ठीक स्मरण है। पर तुम मुझे नहीं जानते हो। तुम्हारे पिता रघुवीरशरणजी मेरे एक घनिष्ठ मित्र थे। मित्र कहने पर ठीक प्रकट नहीं होता, वे मेरे बड़े भाई-से थे। वे अगर जीवित रहते—लेकिन खैर, ये बातें पीछे भी कही जा सकती हैं। तुम सुन कर अवश्य ही बहुत आनन्दित होओगे कि अपने ही कोई मि मृत्यु-काल में अपना सर्वस्व तुम्हारे लिये छोड़ गये हैं। वह वसीयत नामा और नक़द रुपये सब मेरे पास हैं। अपनी सुविधानुसार यहाँ आकर तुम उन्हें ले जाओ तो मुझे चैन मिले। दाता का नाम मैं इस समय प्रकट नहीं करूँगा, पर यह जान रक्खो कि वे निःसन्तान थे, औ उनकी पत्नी की मृत्यु पहले ही हो चुकी थी। मैं तुम्हारे आने की प्रतीक्षा में हूँ।

शुभचिन्तक—
अम्बिकाप्रसाद

पत्र के ऊपर अंग्रेजी अक्षरों में छपा था—अम्बिकाप्रसाद एम० ए०, एल-एल० बी०, बैरिस्टर-एट-लॉ। तब आनन्द को फौरन याद आ गया कि उसने पिता से अनेकों बार इन अम्बिकाप्रसादजी का नाम सुना था। वह और विलम्ब न करके साइकिल पर सवार होकर सड़क पर निकल आया।

धीरे गति से वह साइकिल चलाने लगा। उस समय उसे लग रहा था कि यह दुनिया सचमुच ही बहुत सुन्दर है। सड़क, मकान, प्रकाश और हवा किसी भी वस्तु में रत्ती भर भी असंगति नहीं है। उसने साइकिल की रफ्तार कुछ तेज कर दी।

× × ×

आरामकुर्सी पर लेट कर अम्बिकाप्रसादजी कोई दैनिक अखबार पढ़ रहे थे। उनकी उम्र पचास के लगभग लगती थी; देह कुछ मोटी थी और सिर गंजा था। आनन्द को देखते ही उन्होंने "आओ बेटा,

आओ !" कहकर स्नेह से उसका स्वागत करके सामने की एक गद्दीदार कुरसी पर बैठने के लिये इशारा किया, फिर कहा—"तुमने आकर बडा अच्छा किया है आनन्द, वह सब तुम्हे दिये बिना मुझे चैन नहीं मिल रहा था।" फिर बगल के कमरे की ओर मुँह करके उन्होंने अपनी कन्या से कहा—"बेटी सुशीला, लोहे की आलमारी से वह नोटों का पुलिन्दा और वसीयतनामा तो ले आओ—आनन्द आ गये हैं।" अम्बिकाप्रसादजी कहते गये—"हाँ, मै बेफिक्र हो सकता था बेटा, पर मैं उसे किसी प्रकार भी समझा नही पा रहा हूँ। बेटी अपने बाप को अकेला छोडकर कहीं जाने को राजी नहीं है—कहती है, कौन तुम्हारी सेवा करेगा ? मेरी पगली लड़की कहती क्या है, जानते हो ? पहले मेरी शादी न करके वह किसी प्रकार भी स्वय शादी नहीं करेगी ! अच्छा आनन्द, क्या तुमने कभी सुना है कि लडकी अपने बाप की शादी करती है ?"—यह कह कर वे जोर से हँस पडे।

कन्या सुशीला हाथ मे एक लम्बा लिफाफा और डोरी मे बँधे नोटों की गड्डी लिये उस कमरे मे आ गई। आनन्द उसकी ओर देखते ही कुछ घबरा कर उठ खडा हुआ। अम्बिकाप्रसादजी ने कहा—"बैठो बेटा, बैठो, उठने की आवश्यकता नहीं है।"

सुशीला ने एक बार प्यास-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा, फिर उसने सिर नीचा कर लिया। उसे लगा—'हाँ, ऐसे को सुन्दर युवक कहा जाता है, मानो इसके लिये ही, वह अब तक प्रतीक्षा करती रही है।' और आनन्द ? उसने सोचा कि उसने ऐसा सौन्दर्य पहले कभी भी नहीं देखा था।

अम्बिकाप्रसादजी नोटों की गड्डी खोल कर गिन-गिन कर तिपाई पर रख रहे थे। गिनना खतम होने पर डोरी से फिर बाँधते हुए उन्होंने कहा—"ये साठ हजार रुपये हैं, और चौक का एक मकान और सिविल लाइन्स के तीन बँगले—इनसे साल मे साढ़े छ हजार के लगभग आमदनी होती है—अब यह सब तुम्हारा है।"

उनके बिलकुल निर्विकार भाव से ये सब बातें कहने पर भी आनन्द विह्वल हो पड़ा। उसकी जुबान से कोई बात नहीं निकली।

लेकिन सहसा घड़ी की ओर दृष्टि पड़ते ही अम्बिकाप्रसादजी जरा घबरा उठे। उन्होंने कहा—"बेटा आनन्द, मुझे अभी एक जगह जाना है, बहुत जरूरी काम है, पर तुम अभी किसी प्रकार भी नहीं जा सकोगे—इस बेला यहीं भोजन करो। शरमाओ मत, यह तुम्हारा अपना घर है।" फिर कन्या की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"मैं अब और ठहर नहीं सकता बेटी, आनन्द की खातिर में कोई त्रुटि न होने पावे।" फिर क्षण भर तक चुप रह कर, शायद उन्होंने परमात्मा के उद्देश में कहा—जाने कब इन दोनों का मिलन होगा!

अम्बिकाप्रसादजी और ठहर नहीं सके। कमरे से बाहर जाने के पहले उन्होंने और एक बार आनन्द को याद दिलाया कि यह उसी का घर है—वह तकल्लुफ न करे, सकोच न करे। सीढ़ी से उतरते समय सुनाई दिया कि वे चिल्ला कर 'शोफर' को बुला रहे हैं।

अम्बिकाप्रसादजी के चले जाने पर सुशीला ने विनयपूर्वक कहा—"आप जरा बैठने की कृपा कीजिये, आपके लिये चाय-नाश्ता ले आ रही हूँ।" यह बात कह कर कुछ तेजी के साथ भीतर चली गई।

× × ×

अम्बिकाप्रसादजी के दोमञ्जिले पर की सुसज्जित बैठक में सुशीला के अनुपम मुख की ओर देखता हुआ आनन्द विह्वल की तरह बैठा था। उल्लास के आवेग में उसकी सभी चेतना मानो विलुप्त हो गई थी।

सुशीला ने ही पहले बात की। वह बोली—"आप बहुत भाग्यवान् हैं. ."

आनन्द ने कहा—"मैं भाग्यवान हूँ? नहीं, कभी नहीं, आप अगर जानतीं कि मैं कितना अकेला हूँ—दुनिया में अपना..."

सुशीला बोली—"आप मुझसे 'आप' न कहिये—'आप' कहने के काबिल नही हूँ—बिलकुल नहीं हूँ, मुझे आप सुशीला कहिये. ."

आनन्द ने कहा—"सुशीला !"

सुशीला बोली—"कहिये !"

आनन्द ने कहा—"मुझे स्वीकार करके क्या तुम सुखी होओगी ?"

सुशीला ने केवल "हा" कहा, फिर मेज की ओर आँखें नीची कर लीं, आनन्द की ओर उससे और देखा नहीं गया।

कुछ क्षणों तक दोनों चुप रहे। आनन्द का चित्त स्थिर और स्वाभाविक हो आया। तब उसने कहा—"अच्छा सुशीला, देख रहा हूँ कि तुम्हारे भाई-बहिन नहीं हैं, तुम्हारी माता की मृत्यु कब हुई ?"

सुशीला कहने लगी—"करीबन तीन साल पहले। तब से पिताजी को फिर शादी करने के लिये कितना ही अनुरोध किया है—अब कुमारी रहने का डर दिखाने पर कुछ राजी हुए हैं। हम लोगों ने एक लड़की भी देखी है—मुझसे दो-तीन साल उम्र में वह बड़ी होगी—बहुत सुन्दर है, केवल रुपये की कमी के कारण अब तक उसकी शादी नहीं हुई है। उसके पिता के पास जो धन नहीं है ! आप ही कहिये, क्या पिताजी की उम्र बहुत अधिक हो गई है ?"

आनन्द ने उसकी बुद्धि की बड़ी प्रशसा की और जताया कि आम्बिकाप्रकादजी से फिर शादी करने के लिये वह केवल अनुरोध ही नहीं करेगा, उनको वह राजी करके तब छोडेगा।

घर लौट कर सहसा बिजली की चमक की भाँति उसे रमा याद आ गई—उसे वचन दे दिया है, वह उससे प्रेम करता है। क्या इतने दिनों का प्रेम एक क्षण में भूल जायगा—ठुकरा देगा ? आनन्द के पूर्ण आनन्द-प्रवाह के बीच मानो किसीने एक बड़ा-सा पत्थर फेंक दिया। निर्मल आसमान मानो क्षण भर में बादलों से घिर गया।

किन्तु केवल वही क्षण भर।

क्योंकि उसने फौरन ही इस कठिन समस्या को हल कर लिया। उसने उसी क्षण रमा को अपनी परेशानी की बात लिख भेजी। जवाब में नौकर रमा से जो पत्र लाया वह यह है :—

"आनन्द भैय्या,

आज आपकी जो समस्या है, मेरी भी बिलकुल वही समस्या है। कृपा करके मुझे छोड़ दीजिये। इसी शहर के एक प्रसिद्ध बैरिस्टर के साथ शादी होने की बात चल रही है। यह सच है कि उनकी उम्र कुछ अधिक हो गई है, लेकिन यह कोई बाधा नहीं है। उनकी तरह धनी शहर में कोई नहीं। मेरे माँ-बाप इस विवाह के तय होने से कितना सुखी हुये हैं, यह मैं भाषा में प्रकट नहीं कर सकती। मुझे आशीर्वाद दीजिये कि मैं सुखी हो सकूँ। और अधिक क्या लिखूँ?

—आपकी,

रमा।

× × ×

इस घटना के दो सप्ताह के बाद बड़ी धूम-धाम के साथ सुशीला के साथ आनन्द की शादी हो गई। अम्बिकाप्रसादजी कन्या और जमाई का अनुरोध टाल नहीं सके थे—उन्होंने रमा से शादी कर ली। सुना है—रमा सुख से है। और आनन्द और सुशीला? उन्होंने जमुना के किनारे एक सुन्दर भवन बनाया। विवाह के एक साल के भीतर एक बहुत सुन्दर कन्या ने जन्म लेकर उनका घर अलोकित किया, फिर एक पुत्र।

फिर—

मैं और कहना नहीं चाहता। इसके भीतर 'रोमांस' रह सकता है, वास्तव जीवन में ऐसी घटना घटित हो सकती है, लेकिन यह 'कहानी' नहीं है यह अच्छी तरह समझ सकता हूँ। सचमुच की 'कहानी' में अम्बिकाप्रसादजी अवश्य ही इतने सरल और ईमानदार नहीं होते, और रमा के व्यर्थ प्रेम में आत्महत्या न करने पर भी आनन्द का जीवन इतना सहज हरगिज़ न होता, यह मैं जोरों से कह सकता हूँ।

दो प्रेमी

बहुत दिन पहले नेपाल में दो प्रेमी थे। वे एक दूसरे से तन-मन से प्रेम करते थे, मगर प्रेम ही से उन दोनों की मृत्यु हुई। बाद में उनके प्रेम की कहानी इतनी दूर-दूर तक फैली कि बंगालियों ने उस पर एक गीत रचना की, और इस गीत का नाम रक्खा—'दो प्रेमियों का गीत।'

नेपाल की राजधानी काटमाडू से नौ कोस दूर उत्तर-पश्चिम में जो विशाल शिवगिरि पर्वत है उस पर उस युवक और युवती की समाधि है। राजा ने वहीं एक नगर बसाया था और उसका नाम रक्खा था प्रेमनगर। आज भी उस नगर का भग्नाश वर्त्तमान है, और हर साल बैसाख के शुक्ल पक्ष में वहाँ मेला लगता है।

इस राजा की एक कन्या थी—बहुत ही सुन्दरी और गुणवती। राजा विधुर थे, मातृहीना कन्या को वे अपने जीवन से भी अधिक प्यार करते थे। शशिकला की तरह दिन पर दिन राजकुमारी की आयु और सुन्दरता बढ़ती ही गई। राजकुमारी युवती हो गई। उसके यौवन और सौन्दर्य से मुग्ध कितने ही युवक उसकी कामना करने लगे। मगर राजा को इसका कोई ध्यान नहीं था। अन्त में अपने ही लोग उनसे कहने लगे—"महाराज! अब राजकुमारी की शादी करनी चाहिये।" यह सुनकर पुत्री की वियोग-आशंका से राजा उदास हो गये और सोचने लगे, किस तरह से वे इस दुःख से छुटकारा पा सकें। बहुत सोचने के पश्चात् राजा ने घोषणा की कि जो मेरी कन्या को दोनों हाथों पर उठा कर विशाल शिवगिरि की चोटी तक बिना रुके एक साँस में ले जा

सकेगा, उससे मैं राजकुमारी की शादी करूँगा। देश भर में यह खबर फैलते ही राजकुमारी को पाने की आकाक्षा से अनेकों युवक आये। उन्होंने कोशिश तो बहुत की, पर अपनी सामर्थ्य से अधिक बल कैसे लगाते? वे चाहे कितने ही बलवान हों, आधी दूर तक पहुँचते-पहुँचते बेदम होकर जमीन पर गिर पडते। इसी तरह कुछ ही दिनों में, राज भर मे ऐसा कोई साहसी नही दीख पडा, जो इस सौन्दर्य की रानी को पाने का साहस कर सकता।

उसी राजधानी मे, सरदार घराने का एक बहुत ही रूपवान, नम्र और वीर युवक था। वह राजकुमारी को प्राप्त करने का सब से अधिक इच्छुक था। राजमहल मे उसका बचपन से आना जाना था—राजकुमारी से मित्रता थी—और राजा भी उससे प्रेमपूर्ण व्यवहार करते थे। उसने कितनी ही बार राजकुमारी से अपना प्रेम व्यक्त किया था। राजकुमारी भी सरदार युवक को वीर और मनोहर देखकर उसे बहुत चाहती और उससे प्रेम करती थी। मगर उस प्रेम के बारे मे किसी को भी कुछ मालूम नहीं था। उसे छिपे-छिपे प्रेम करना बहुत दुःखदायी मालूम होने लगा पर कोई चारा नहीं था—चुप-चाप इस प्रेम की ज्वाला को सहन करने के सिवाय और कोई उपाय नहीं था। राजकुमारी को पूर्ण रूप से पाने की इच्छा उसे पागल कर देती। वह जानता था, राजा से अनुमति मिलना असम्भव था—शादी होने पर लड़की और उनके पास नहीं रह सकेगी, इस वियोग की आशका से वे झट अस्वीकार कर देंगे, केवल एक उपाय यह था कि राजकुमारी को शिवगिरि तक उठाकर ले जायँ।

अन्त में जब सरदार-युवक से और नहीं रहा गया, तो वह राजकुमारी के पास जाकर बोला—"चलो प्यारी, हम लोग कहीं भाग चलें। तुम्हें न पाकर मेरा चित्त अधीर हो गया है—मुझसे और सहा नहीं जाता।"

राजकुमारी बोली—"प्रियतम ! मैं जानती हूँ कि तुम मुझे चोटी
क उठाकर नहीं ले जा सकोगे । और अगर मैं तुम्हारे साथ भाग
चलूँ, तो पिता को बहुत दुःख होगा—वे जीवन की अन्तिम घड़ी तक
जीवनमृत रहेंगे । मैं उन्हें किसी तरह का भी दुःख नहीं दे सकूँगी ।
नहीं—नहीं भाग चलना मेरे लिये असम्भव है । हम लोग कोई और
रास्ता निकालें"—यह कह कर कुछ देर तक सोच कर बोली—
"देखो—नन्दगाँव में मेरे एक मौसा हैं । उन्होंने अपना सारा जीवन
आयुर्वेद की गवेषणा में काट दिया है । वे कितनी ही जड़ी-बूटियों के
ाद को जानते हैं । तुम अगर मुझसे एक पत्र ले जाकर उनसे मिलो,
ो वे अवश्य ही कोई उपाय बता देंगे । तुम यह निश्चय मान लो कि
 कोई ऐसी दवा देंगे जिससे तुम्हारी देह और मन में शक्ति बढ़ेगी
और तुम अनायास ही मुझे पहाड़ की चोटी तक ले जा सकोगे । तब
तुम पिता से मुझसे विवाह करने का प्रस्ताव करना ।"

राजकुमारी की बुद्धिपूर्ण सलाह सुनकर सरदार-युवक को बहुत
र्ष हुआ और उसने मीठे शब्दों से धन्यवाद देकर विदा की आज्ञा
ी । फिर अपने घर आकर, झट-पट कुछ आवश्यक सामान लेकर
तीन नौकरों के साथ तेज घोड़ों पर वह नन्दगाँव की ओर चल पड़ा ।
पहाड़ों के अन्दर से बड़ी लम्बी यात्रा थी, एक दिन और एक रात
चलने के बाद वे वहाँ पहुँचे । मौसा को राजकुमारी का पत्र देकर
उन्होंने अपनी दुःख-कथा सुनाई । मौसा धीरे-धीरे राजकुमारी के पत्र
की हरेक पंक्ति पढने लगे । पढ़कर, सरदार-युवक को प्रतीक्षा करने के
लिये कहकर वे भेषज-कक्ष के अन्दर गये, और वहाँ एक ऐसा अर्क
बनाने लगे जिसे पीने पर हृदय, खून और हड्डियों में अदम्य शक्ति
होगी । यह दवा बनाकर एक शीशी में भरकर उन्होंने युवक को दी
और इसका गुण बता दिया । युवक बहुत खुश हुआ और जल्द अपने
र लौट आया ।

सरदार-युवक घर पर ज्यादा देर तक न ठहरा । राजमहल के सभागृह में जाकर उसने राजा से साक्षात् किया और उनसे राजकुमारी का विवाह करने का प्रस्ताव कर कहा कि वह राजकुमारी को शिवगिरि की चोटी तक हाथों पर उठाकर ले जाने के लिये तैयार है । राजा का उस पर कुछ स्नेह था, वे उसे समझाने लगे, यह कार्य कितना कठिन है । मगर सरदार-युवक ने न माना । बड़े से बड़े पहलवान जिसमें असफल रहे, यह तरुण कमजोर युवक उस पर सफलता पाने की आशा कर रहा है, यह देखकर राजा मन ही मन मुस्कराये । खैर, उन्होंने एक तारीख निश्चित की । फिर मित्रों और सभासदों को पत्र लिख कर यह साहसपूर्ण कार्य देखने के लिये निमन्त्रण दिया । और फिर घोषणा कराई कि फलाँ युवक राजकुमारी को हाथों पर उठा कर पहाड़ पर चढ़ने वाला है—सब कोई आकर देखें । राज्य भर के लोगों को मालूम हो गया । अपने प्रेमी की सफलता के लिये राजकुमारी दिन-रात प्रार्थना करने लगी । अपना वजन कम करने के लिये उसने भोजन करना छोड़ दिया, जिससे युवक को उसे ले जाने में अधिक कष्ट न हो ।

नियत दिन पर वह सरदार-युवक समय से कुछ पहले ही नियत स्थान पर आ गया—उसके साथ वह अर्क की शीशी थी । राज्य भर के लोग वहाँ इकट्ठे हुए थे । राजा राजकुमारी को साथ लेकर पहाड़ के नीचे नियत स्थान पर आये । सरदार-युवक ने राजकुमारी को हाथों पर उठा लिया । उसने उठाने के पहले राजकुमारी को उस अद्भुत अर्क की शीशी को रखने के लिये दिया, क्योंकि आत्म-सम्मान के ख्याल से उसने यह निश्चय किया था कि जब तक बहुत खतरे की सम्भावना न हो, तब तक वह उसे नहीं पियेगा । युवक बढ़ा और तेज़ी से आधी चढ़ाई तक चढ़ गया । हजारों लोग दूर से उसका पीछा कर रहे थे । इतनी कोमल राजकुमारी को ले जाने में उसे इतना सुख और आनन्द

मित्र

आनन्दराम मेरे निकट कदाचित् सदा के लिये भारी रहस्य रह ायगा। हम दोनों ने इस लम्बे पच्चीस वर्ष के जीवन का अधिकाश .क साथ काट दिया है; पर इस रहस्यमय मनुष्य को मैं न समझ का। बचपन से ही उसके चित्त की गति ऐसी अजीव है। याद पड़ता ; बहुत पहले बचपन में—जब हम दोनों एक हाई स्कूल की परीक्षा ी तैयारी कर रहे थे—एक गहरी अँधेरी रात्रि मे उसके मकान मे म दोनों एक ही कमरे मे सो रहे थे, सहसा उसने मुझे जगा कर कहा ि कपिलदेव! अब मैं समझा हूँ कि मनुष्य क्यों मर जाता है।

मैंने निद्राजड़ित स्वर में पूछा कि तुमने क्या समझा?

उसने कहा कि, इसलिये कि जीवित रहने का आनन्द थकानेवाला ौर कड़वा न हो जाय। मैं आज समझ गया कि मृत्यु परमात्मा का .क भारी उपहार है।

और एक रात्रि की बात है। उस मध्य-रात्रि में बड़े ज़ोरों से वर्षा । रही थी। दीवार की ओर मुँह करके वह लेटा हुआ था, सहसा बैठ र उसने कहा कि, कपिलदेव! मुझे कोई चीज़ दे सकते हो?

मैंने चकित होकर पूछा कि, क्या?

उसने अपनी छाती दिखाकर कहा कि, जिससे यह छाती चीर दी ा सके। मनुष्य की इतनी अजीब अनुभूतियाँ इतनी-सी जगह में कहाँ छपी रहती हैं यह मुझे देखने की बड़ी इच्छा होती है।

× × ×

जब राजकुमारी को पूर्ण विश्वास हो गया कि उसका प्रेमी मर गया है, तो वह शोक से पागल हो गई। उसने उसकी आँखों और मुँह चुम्बन कर उसके शरीर पर गिर कर दोनों हाथों से अपने हृदय में भर लिया और दुःख भरी करुण स्वर से उसे रोने लगी। कठिन से कठिन हृदय भी यह शोक देख कर पिघल गये। इसी तरह उस अतुल राजकुमारी ने, जिसकी जोड़ी संसार में न थी और न होगी—रोते रोते प्राण त्याग दिये।

इन दोनों प्रेमियों का उत्तर आते न देखकर राजा और उन सभासद लोग पहाड़ पर चढ़ गये। जब राजा ने उन्हें आलिङ्गन अवस्था में मृत पड़े देखा, तो वे बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े। होश में आने पर वे शोकाकुल होकर रोने लगे—और लोग भी रो रहे थे।

लोगों की इच्छा से उन दोनों को जलाया नहीं गया। उन्हें वहीं गाड़ दिया गया और वहाँ पर राज्य के सर्वोत्तम कारीगरों के द्वारा एक विशाल सङ्गमर्मर की समाधि बनाई गई।

अब उस पर्वत का नाम शिवगिरि नहीं है—वह अब प्रणयगिरि के नाम से प्रसिद्ध है। और उनकी प्रेम की कहानी इतनी दूर-दूर तक फैल गई है कि बंगालियों ने उस पर एक गीत-रचना की है।

मित्र

आनन्दराम मेरे निकट कदाचित् सदा के लिये भारी रहस्य रह
जायगा। हम दोनों ने इस लम्बे पच्चीस वर्ष के जीवन का अधिकांश
क साथ काट दिया है; पर इस रहस्यमय मनुष्य को मैं न समझ
का। बचपन से ही उसके चित्त की गति ऐसी अजीब है। याद पड़ता
बहुत पहले बचपन में—जब हम दोनों एक हाई स्कूल की परीक्षा
तैयारी कर रहे थे—एक गहरी अँधेरी रात्रि में उसके मकान में
दोनों एक ही कमरे में सो रहे थे; सहसा उसने मुझे जगा कर कहा
कपिलदेव! अब मैं समझा हूं कि मनुष्य क्यों मर जाता है।

मैंने निद्राजड़ित स्वर में पूछा कि तुमने क्या समझा?

उसने कहा कि, इसलिये कि जीवित रहने का आनन्द थकानेवाला
र कड़वा न हो जाय। मैं आज समझ गया कि मृत्यु परमात्मा का
क भारी उपहार है।

और एक रात्रि की बात है। उस अन्ध-रात्रि में बड़े जोरों से वर्षा
रही थी। दीवार की ओर मुँह करके मैं लेटा हुआ था, सहसा बैठ
र उसने कहा कि, कपिलदेव! मुझे कोई चीज दे सकते हो?

मैंने चकित होकर पूछा कि, क्या?

उसने अपनी छाती दिखाकर कहा कि, जिससे यह छाती चीर दी
सके। मनुष्य की इतनी अजीब अनुभूतियाँ इतनी सी जगह में कहाँ
पी रहती हैं यह मुझे देखने की बड़ी इच्छा होती है।

* * *

...विमला !—वह मानो भोर के श्वेत-कमल की प्रथम खिली पंखुड़ी है, शरद्काल के स्वच्छ नीले आकाश की लालिमा है, मिलन-रात्रि में घूँघट के भीतर की लाजभरी दृष्टि है! भूले हुये स्वर की अनुभूति की भाँति वह जाने किस कल्पना-जगत से आकर मेरे जीवन के सामने आ खड़ी हुई है!...

सिर्फ कई मास पहले नैनीताल में जाकर एकाएक उन लोगों से मेरा परिचय हो गया। किन्तु प्रथम परिचय का संकोच इसी बीच जाने कब विलीन हो गया, इसका पता नहीं चला! अब लगता है कि मानो आजीवन हम लोग परिचित हैं, मानो एक ही पेड़ की एक ही डाल में हम दोनों के घोसले हवा के झोंके से एक दूसरे से टकरा जाते हैं!...

× × ×

कल आनन्दराम को विमला के मकान में ले गया था। कितनी ही बातें हुईं!—विमला की मा ने भी कुछ देर तक आनन्दराम से बातें कीं।

घर लौटते समय आनन्दराम ने पूछा कि, विमला तुम्हें कैसी लगी ?

उसने फौरन उत्तर दिया कि, बहुत सुन्दर है! मुझे सभी मनुष्य सुन्दर लगते हैं।

मैं मन ही मन उस पर नाराज हो गया। क्या विमला साधारणों में से एक है,—क्या उसमें विशेषत्व नहीं है ?

कुछ देर तक चुप रह कर आनन्दराम ने कहा कि, तुम विमला से शादी कर लो—सुखी होगे।

एक अपूर्व आनन्द से मेरा सारा चित्त डोल उठा। जो बात मेरे हृदय की गुप्त जगह में छिपी थी, कभी किसी से भी नहीं कहा—आनन्दराम से भी नहीं, अब उसी बात को उसकी जुबान से सुनकर

साफ सुन कर मै आनन्दित हो उठा! पर एक तीव्र सन्देह भी मेरे हृदय मे काँटे की तरह चुभा हुआ था। मैने कहा कि मेरी आर्थिक हालत तो तुम्हें सब मालूम है—मैं तो तुम्हारी तरह लखपती नहीं हूँ—अगर विमला के पिता मुझसे शादी न करें?

आनन्दराम ने कहा कि तब क्यो झूठे प्रेम-जाल मे फॅस कर उसे और अपने को परेशान कर रहे हो?

मैं चुप रहा।

× × ×

सन्ध्या के समय जब विमला ने गाना समाप्त करके मेरी ओर देखा, तब मैं अपने को रोक नहीं पाया, कह डाला कि विमला, तुम तो पण्डितजी से ज्योतिष सीख रही हो, तुम्हारी अम्माँ तुम्हारी तारीफ भी कर रही थीं। अच्छा, क्या तुम मेरा हाथ देखकर यह बता सकती हो कि देवीजी को मेरी पूजा स्वीकार होगी या नहीं?

वह कुछ भी नही बोली, केवल एक सॉस फेंक कर चुप रही।

मैंने फिर कहा, क्या कभी मेरी आशा पूरी हो सकेगी, विमला?

उसने फिर भी कुछ उत्तर नही दिया—सिर नीचा किये चुप रही।

फिर मैं चला आया।

× × ×

कल आनन्दराम से कहा, "तुम तो मुझे शादी की सलाह दे रहे हो, पर तुम कब शादी करोगे? तुम इतने धनी हो—तुम्हारा कोई है भी नहीं, तुम्हे तो शादी करनी ही चाहिये।"

आनन्दराम ने कहा कि हाँ अब शादी करूँगा—बहुत जल्दी।

मैंने उत्साह के साथ पूछा कि कब?

उसने ज़रा मुस्करा कर कहा कि जब डाक्टर की आज्ञा होगी।

मैंने कहा, "इसके मानी?"

उसने उसी तरह मुस्कराते हुये कहा कि मानी यह कि जब श्मशान में चिता पर लेटूँगा। क्या तुम्हें पता नहीं है कि मेरे माँ-बाप और भाई बहिनों की मौत किस बीमारी से हुई है? उस रोग के कीटाणु देह में लिये भला, शादी कैसे की जा सकती है?

एक नीरव वेदना से मेरा हृदय भर उठा—मैं जानता था कि किस कठिन रोग से उसके सब घरवालों ने एक-एक करके जगत् से विदा ली थी, अब वही केवल अपने शुद्ध और संयत जीवन काटने के लिये जीवित है। फिर भी उसे आश्वासन देते हुये कहा कि लेकिन तुममें तो उस रोग का कोई लक्षण नहीं है।

उसने कहा कि इस समय तो नहीं है, पर कभी दीख तो सकता है।

कुछ क्षणों तक चुप रह कर मैंने कहा कि अच्छा, आनन्दराम, तुम जीवन से इस तरह बिलकुल विश्वासहीन होकर कैसे जिन्दा हो?

उसने निर्विकार के स्वर में उत्तर दिया, इसलिये कि जीने पर कोई भार नहीं है।

× × ×

इस प्रकार अनिर्दिष्ट समय तक आशा और आकांक्षा के झूले पर और मैं झूल नहीं सकता। मैं आज विमला से साफ-साफ पूछूँगा कि वह मेरी होगी या नहीं। मुझे पता है कि वह क्या कहेगी। तब मैं सीधा उसके पिता के पास जाकर खुल्लमखुल्ला विवाह का प्रस्ताव करूँगा। उनको मेरा प्रस्ताव स्वीकार होना चाहिये, क्योंकि मैं अयोग्य नहीं हूँ। अगर वे राजी नहीं होंगे, तो मैं किसी बाधा की परवाह न करूँगा, चाहे सीधे या टेढ़े मैं उनसे विमला को छीन लूँगा। फिर हम लोग किसी दूर—बहुत दूर देश में चले जायेंगे, जहाँ हम पूर्ण सुख से जिन्दगी गुजारेंगे। इतनी बड़ी दुनिया के किसी एकान्त कोने में क्या हम दोनों के लिये थोड़ी-सी जगह नहीं मिलेगी?

× × ×

आज समझ गया कि नारी-चरित्र सचमुच ही अज्ञेय है! इतने दिनों से कितने ही एकान्त क्षणों में विमला की उत्सुक आँखों में मिलन के लिये व्याकुल दृष्टि देख कर मैं बड़ा आनन्दित हो उठता था; पर आज अच्छी तरह समझ गया कि वे सब केवल अभिनय ही थे, उनके पीछे ज़रा-सी भी आन्तरिकता नहीं थी। कल शाम को उसे एकान्त में पाकर जब उससे अपनी सारी हृदय की व्यथा कह सुनाई, तो सब सुन कर उसने केवल अलस भाव से कहा कि मेरे माँ-बाप आपसे शादी नहीं करेंगे, मैं क्या कर सकती हूँ!

मैंने कहा कि शायद इसलिये कि मैं धनी नहीं हूँ—है न? लेकिन क्या धन ही सबसे बड़ी चीज है। क्या प्रेम कोई चीज नहीं है? तुम तो अब बालिग हो, तुम खुद सब समझ सकती हो। उनकी सम्मति की जरूरत ही क्या है?

इसके जवाब में उसने कहा कि उनके इतने दिनों के स्नेह और यत्न का अपमान मुझसे नहीं हो सकेगा। मेरे ख्याल में ऐसा करने पर मैं सुखी नहीं हो सकती।

उसकी बात सुन कर मैं चकित हो गया। उसकी ओर कठोर दृष्टि से देख कर कहा, "तो साफ बात यह है कि तुम मुझे नहीं चाहती हो!"

उसने कुछ नहीं कहा, वह सिर नीचा किये चुप रही—फिर भी वह नारी का प्राकृतिक छल करना नहीं भूली—आँखों में आँसू की बूँदे भर लाई।

तब मैं और अपने को सम्हाल नहीं सका—उसे झूठी, धोखेबाज आदि जो भी मेरी जुबान में आया कह दिया, और बिना विदा लिये आते समय कहा कि यहीं शेष है!

× × ×

विमला के घर में जो कुछ हुआ था, सब आनन्दराम से कहा। उसने चुपचाप सब बात सुनकर कहा कि उसने तो ठीक ही किया, इसमें तो तुम्हें दुःखित होने को कुछ नहीं है।

मैंने खिन्न होकर कहा कि मैं उसके लिये कुछ भी दुःख नहीं कर रहा हूँ आनन्दराम, लेकिन मुझे दुःख यह है कि तुम उसका समर्थन कर रहे हो। क्या तुम्हारे निकट विमला मुझसे बड़ी है?

आनन्दराम ने मुस्करा कर कहा, "खैर इन बातों को छोड़ो। अच्छा तुम तो स्त्रियों के अधिकार और विधवा-विवाह के बड़े समर्थक हो, क्या तुम स्वयं किसी विधवा से शादी कर सकते हो?

मैंने कहा कि मैं विधवा-विवाह का समर्थक हूँ, इसलिये क्या मुझे किसी विधवा से ही शादी करनी पड़ेगी, किसी कुमारी से शादी नहीं कर सकता?"

आनन्दराम ने कहा, "मैं यह नहीं कह रहा हूँ। मैं कहता हूँ कि—तुम थोड़ी देर के लिये कल्पना कर लो—अगर कभी बिलकुल विमला की शकल-सूरत की किसी विधवा को पा जाओ, तो क्या तुम उसे अपने सारे हृदय का प्रेम देकर अपनी पत्नी के रूप में ले सकोगे?

मैंने दृढ़ता से कहा कि अवश्य ले सकूँगा, क्यों नहीं ले सकूँगा पर विमला के व्यवहार से मन स्त्रियों पर मेरी घृणा हो गई है।

मेरी बात के उत्तर में आनन्दराम ने कुछ भी नहीं कहा, केवल मुस्कराया। उसकी इस विशाल मुस्कान से मुझे क्रोध आ गया और मैंने कहा 'तुम जब तब इतना हँसते क्यों हो, कहाँ से तुम्हें इतनी हँसी आ जाती है?"

आनन्दराम ने उसी प्रकार मुस्कराते हुए कहा, "इस दुःखी संसार में इस हँसना ही का बड़ा लाभ है, इसीलिये हँसते रहता हूँ—यह भाई, हँस कर पाता हूँ।"

/ / ×

घर और स्वदेश छोड कर धन कमाने की आकांक्षा से इस सुदूर मलय टापू मे आ गया हूँ। मैं धनी नहीं हूँ, इसलिये विमला ने मुझसे शादी नहीं की थी। यहाँ सौ 'एकड' जमीन ली है। 'रबड़' की खेती करूँगा। इस 'रबड' की खेती से धन कमा कर कभी स्वदेश लौट जाऊँगा। फिर विमला से भी किसी सुन्दर युवती से शादी करके विमला की आँखो के सामने सिर ऊँचा किये फिरूँगा।—लेकिन सबसे आश्चर्य की बात यह है कि जब आनन्दराम से इस सुदूर टापू मे आने का संकल्प जताया, तो उसने रत्ती भर भी बाधा नहीं दी, बल्कि कहा "बहुत अच्छा विचार है, चले जाओ। हम लोगो की इस छोटी सीमा के बाहर की दुनिया को अच्छी तरह देख आओ, जीवन के व्यापार मे काम मे आ जायगा। पर कभी-कभी चिट्ठी लिखते रहना।."

× × ×

देखते-देखते दो वर्ष बीत गये। पहले-पहल स्वदेश के लिये आत्मीय और मित्रो के लिये चित्त उदास हो जाता था। पर एक-एक करके सभी मेरे मन से हटते जा रहे हैं। केवल आनन्दराम अकसर याद आता है। और याद आता है—खैर .

आनन्दराम से प्रति मास एक पत्र पा जाता हूँ। अनेक अट-सट बाते लिखता है। इतनी अट-सट के साथ और भी एक अट-सट तो लिख सकता है, लेकिन किसी भी पत्र मे नहीं लिखता है। खैर, इसके लिये कोई अफसोस नहीं है।

× × ×

आज की डाक मे आनन्दराम का पत्र पाकर चित्त उदास हो गया। उसने लिखा है कि रोज शाम को उसे थोडा बुखार हो रहा डाक्टर ने शका प्रकट की है कि तपेदिक का आरम्भ हो सकता

विमला के घर में जो कुछ हुआ था, सब आनन्दराम से कहा। उसने चुपचाप सब बात सुनकर कहा कि उसने तो ठीक ही कहा, इसमें तो तुम्हें दुःखित होने को कुछ नहीं है।

मैंने दिक होकर कहा कि मैं उसके लिये कुछ भी दुःख नहीं कर रहा हूँ आनन्दराम, लेकिन मुझे दुःख यह है कि तुम उसका समर्थन कर रहे हो। क्या तुम्हारे निकट विमला मुझसे बड़ी है?

आनन्दराम ने मुस्करा कर कहा, "खैर इन बातों को छोड़ो। अच्छा तुम तो स्त्रियों के अधिकार और विधवा-विवाह के बड़े समर्थक हो, क्या तुम स्वयं किसी विधवा से शादी कर सकते हो?

मैंने कहा कि मैं विधवा-विवाह का समर्थक हूँ, इसलिये क्या मुझे किसी विधवा से ही शादी करनी पड़ेगी, किसी कुमारी से शादी नहीं कर सकता?"

आनन्दराम ने कहा, "मैं यह नहीं कह रहा हूँ। मैं कहता हूँ कि—तुम थोड़ी देर के लिये कल्पना कर लो—अगर कभी बिलकुल विमला की शक्ल-सूरत की किसी विधवा को पा जाओ, तो क्या तुम उसे अपने सारे हृदय का प्रेम देकर अपनी पत्नी के रूप में ले सकोगे?"

मैंने इतना ही कहा कि अवश्य ले सकूँगा, क्यों नहीं ले सकूँगा! पर विमला के व्यवहार से सब स्त्रियों पर मेरी घृणा हो गई है।

मेरी बात के उत्तर में आनन्दराम ने कुछ भी नहीं कहा, केवल ज़रा मुस्कराया। उसकी इस कुटिल मुस्कान से मुझे क्रोध आ गया, तेज़ स्वर में कहा, "तुम जब-तब इतना हँसते क्यों हो, कहाँ से तुम्हें इतनी हँसी आ जाती है?"

आनन्दराम ने उसी प्रकार मुस्कराते हुए कहा, "इस दुःखी और रूखी दुनिया में हम हँस पाना ही बड़ा लाभ है, इसलिये हँसने की कोशिश करता हूँ—पर भाई, हँस कहाँ पाता हूँ?"

/ / ×

घर और स्वदेश छोड कर धन कमाने की आकाक्षा से इस सुदूर मलय टापू में आ गया हूँ। मैं धनी नहीं हूँ, इसलिये विमला ने मुझसे शादी नहीं की थी! यहाँ सौ 'एकड' जमीन ली है। 'रबड' की खेती करूँगा। इस 'रबड' की खेती से धन कमा कर कभी स्वदेश लौट जाऊँगा। फिर विमला से भी किसी सुन्दर युवती से शादी करके विमला की आँखों के सामने सिर ऊँचा किये फिरूँगा!—लेकिन सबसे आश्चर्य की बात यह है कि जब आनन्दराम से इस सुदूर टापू में आने का सकल्प जताया, तो उसने रत्ती भर भी बाधा नहीं दी, बल्कि कहा "बहुत अच्छा विचार है, चले जाओ। हम लोगों की इस छोटी सीमा के बाहर की दुनिया को अच्छी तरह देख आओ, जीवन के व्यापार मे काम मे आ जायगा। पर कभी-कभी चिट्ठी लिखते रहना। .."

× × ×

देखते-देखते दो वर्ष बीत गये। पहले-पहल स्वदेश के लिये आत्मीय और मित्रों के लिये चित्त उदास हो जाता था। पर एक-एक करके सभी मेरे मन से हटते जा रहे हैं। केवल आनन्दराम अकसर याद आता है। और याद आता है—खैर...

आनन्दराम से प्रति मास एक पत्र पा जाता हूँ। अनेक अट-सट बातें लिखता है। इतनी अट-सट के साथ और भी एक अंट-सट तो लिख सकता है, लेकिन किसी भी पत्र मे नहीं लिखना है। खैर, इसके लिये कोई अफसोस नहीं है।

× × ×

आज की डाक मे आनन्दराम का पत्र पाकर चित्त उदास हो गया। उसने लिखा है कि रोज शाम को उसे थोडा बुखार हो रहा है। डाक्टर ने शंका प्रकट की है कि तपेदिक का आरम्भ हो सकता

पत्र के अन्त में उसने मजाक से लिखा है कि अब उसके विवाह का समय हुआ है, इसलिये वह योग्य कन्या की खोज में है।

यह आनन्दराम सदा ही अपने को भूला रहता है। जरूर ही उसे तपेदिक ने आ घेरा होगा। ओह, बेचारा! लग रहा है कि यहाँ धन कमाने की जरूरत नहीं है, स्वदेश लौट जाऊँ, उसे बचाने की चेष्टा करूँ—ओह, उसका कोई भी नहीं है! फिर लगता कि मेरे वहाँ जाने से क्या फायदा! उसे धन की कमी नहीं है, उसके इशारे पर डाक्टर और नर्स उसे घेरे रहेंगे।

× × ×

ओफ! मनुष्य की धोखेबाजी की भला, कोई सीमा भी होती है! जिस आनन्दराम के साथ मेरी इतनी घनिष्ठ मित्रता रही है, जिसके निकट मेरा कुछ भी गुप्त नहीं था, जिस पर मैं दिल से विश्वास करता था, उसने मेरी इतनी भारी प्रतारणा की! जिसे अन्य सब मनुष्यों से बढ़कर समझ कर हृदय से श्रद्धा करता आ रहा हूँ उसीके मन में इतना नीच लोभ छिपा हुआ था?

आज उसकी एक चिट्ठी आई है। उसने लिखा है कि विमला के माँ-बाप विमला के लिये वर की तलाश कर रहे थे, मेरे प्रस्ताव भेजने पर वे खुशी से राजी हो गये हैं। विमला से कुछ भी नहीं पूछा है—पूछने की आवश्यकता भी क्या है? इस महीने में विवाह की तिथि नहीं है, अगले महीने में होगी। तारीख निश्चय करके वे शीघ्र ही मुझे बतलायेंगे। मैं डरता हूँ कि कहीं कोई बाधा न आ पड़े, इसलिये जल्दी से जल्दी शादी कर डालना चाहता हूँ। तुम बहुत दूर पड़े हो, इसलिये तुम्हें बुलाने का साहस नहीं कर पा रहा हूँ, अगर आ सको तो, अवश्य आना।

फिर पत्र के अन्त में लिखा है कि उधर एक महीने तक बुखार नहीं था, फिर पारी से ज्वर मालूम हो रहा है। भाई, अब मेरा जाने का समय आ गया है, इसीलिये और भी शीघ्रता से इस काम को

खतम कर डालना चाहता हूँ, जिससे हृदय की एक बड़ी कामना पृथ्वी पर छोड़ कर जाना न पड़े।

कितना हृदयहीन पशु है! बाप-दादे की छोड़ी हुई दौलत के अहंकार से वह ऐसी विश्वासघातकता करके जान-बूझकर एक स्त्री का जीवन सदा के लिये बरबाद कर रहा है! पर मैं भी उस अभागी के माँ-बाप को अपने भावी दामाद के रोग के विषय में कुछ भी नहीं बताऊँगा। वे दौलत के भूखे हैं। जब लड़की विधवा होकर सामने आकर खड़ी होगी, तब वे अपनी लड़की को दौलत का लड्डू खिलाते रहेंगे! मैं उस दिन की प्रतीक्षा मे रहूँगा! वह बेईमान भी जानता है, इसीलिये अपनी शादी की खबर देने मे उसे आशका नहीं हुई।

× × ×

सोचा था कि शैतान की चिट्ठी का कोई जवाब नहीं दूँगा, पर बिना दिये मुझसे रहा नहीं गया। उसे केवल यह लिखा कि यह मैं जानता था कि वह पशु है, पर अब पता लगा कि मनुष्य-पशु असली पशु से भी कितना नीच होता है!

× × ×

मेरा अन्तिम पत्र पाकर डेढ़ मास तक चुप रह कर आज की डाक से उसने फिर एक चिट्ठी भेजी है। मेरे पत्र का कुछ भी उल्लेख न करके एकदम बेहया की तरह लिखा है कि, भाई कपिलदेव! विमला मेरे शून्य घर मे आ गई है—मेरी दो दिन के लिये मेहमान होकर। उसका सग-सुख अधिक दिनों तक चरा नहीं सकता! मेरी देह टूटती जा रही है। जीवन के प्रति मेरा कभी भी कोई लोभ नहीं था, पर विमला को निकट पाकर जीवित रहने की बड़ी इच्छा हो रही है। पर यह नहीं हो सकता—असभव है।

फिर उसने लिखा है कि अपने शरीर पर ध्यान रखना, चाहे किसी पर अभिमान कर लो, पर अपने को अवहेलना करके वह अभिमान प्रकट न करना।

× × ×

दिन व रात विमला याद पड़ जाती है और हृदय में शूल चुभने लगते हैं। उसे जितना ही भूल जाने की कोशिश करता हूँ, वह उतनी ही स्मरण हो जाती है। हाँ, भूल सकता—अगर उसकी शादी किसी दूसरे से होती। पर वह अब आनन्दराम की पत्नी है, यह बात मैं किसी तरह भी नहीं भूल सकता! बेईमान थोड़े दिनों के बाद मर जायगा, पर उसने ऐसी धोखाबाजी करके सदा के लिये मेरे हृदय में आग जला दी! कभी कभी इच्छा होती है कि वहाँ जाकर देख आऊँ—वह धन की लोभी विमला श्मशान-वासी पति के साथ कैसा व्यवहार कर रही है!..

× × ×

इतना भारी लिफाफा हिन्दुस्तान से आया? यह तो उस बेईमान की लिखावट है! हूँ, तो भला, अब उसने क्या चाल चली है!..

[illegible] क्या? क्या यह सब सच है? यह तो वसीयतनामा!...

[illegible]राम ने लिखा है 'भाई [illegible], जब तुम यह पत्र [illegible] इस दुनिया से मेरा रिश्ता टूट जायगा। तुमने विमला [illegible] मैं जानता हूँ कि वह भी तुम्हें चाहती थी। पर वह [illegible] था। तुम उसे भाग्य से पा ही नहीं पाये। इस कारण [illegible] जाना पड़ा है। मैं जानता हूँ कि तुम्हें [illegible] पसन्द नहीं है।

[illegible] छोड़ जाता, मैं अपनी सारी सम्पत्ति तुम्हारे लिये [illegible] है। इससे मुझे प्रसन्नता [illegible] है।

[illegible]

तु. और
आनन्द

[illegible]

अदृष्ट-रेखा

रामलोचन बन्दूक कंधे पर लेकर खजाने के सामने टहलते हुये पहरा दे रहा था और अपनी किस्मत के बारे में सोच रहा था।

रामलोचन औरंगाबाद में खजाने का पहरेदार था। जिला छपरा के एक गाँव में उसका घर था। परन्तु वह सालों से घर नहीं गया था। पहले वह अपनी पत्नी के साथ रहता था। उसकी बदली कितने ही शहरों में हुई थी और कितनी ही होलियाँ उसने अपनी पत्नी के साथ बिताई थीं। वह सरकारी नौकरी बहुत दिनों से कर रहा है। जब उसकी उम्र बाईस साल की थी तब उसने यह नौकरी ली थी और अब उसकी उम्र बावन साल की हो रही है। और कुछ ही साल बीतने पर उसे पेंशन मिलेगी, पर पेंशन मिलने से क्या, वह तो घर जाकर चैन से दिन नहीं काट सकेगा। घर जाते ही उसे आशंका होती है। उस आशंका का एक इतिहास गुप्त है।

रामलोचन सदा अपनी पत्नी के साथ रहता था। जब उसकी उम्र नौ साल की थी तब पार्वती के साथ उसकी शादी हुई थी। उसकी चौबीस साल की उम्र में उसके माँ-बाप दोनों ही प्लेग में मर गये, तब से वह अपनी पत्नी को अपने साथ रखता था। कोई बच्चा न होने के कारण उसके मन में गहरा दुख था। जब दोनों की उम्र पैंतीस साल की हुई तब भी कोई बच्चा नहीं हुआ था। फिर जब वह गया में था, उस समय उसे मालूम हुआ कि पार्वती के बच्चा होगा। बच्चा होने की बात सुन कर रामलोचन आनन्द से अधीर हो गया था, और उस दिन से अपनी पत्नी को वह कोई कठिन काम नहीं करने

देता था। वह स्वयं भोजन बनाता, बरतन मलता और घर का अन्य काम भी करता था।

गया में पार्वती ने एक पुत्र प्रसव किया। रामलोचन पुत्र का मुख देख कर आनन्द से पागल-सा हो उठा। मित्रों को एक दिन दावत दी। मुहल्ले में प्रसाद बाँटा। इन सबके लिये उस पर कुछ रुपये कर्ज भी हो गये, फिर भी रामलोचन को दुःख न हुआ। रामलोचन ने पुत्र का नाम जगबहादुर रक्खा। जगबहादुर के पैरों-पैरों चलने-फिरने के पहले उसने निश्चय कर रक्खा था कि जगबहादुर को बन्दूक लेकर पहरा देने का काम न करना पड़े। उसे वह अँगरेजी सिखायेगा। जगबहादुर के बोलने के पहले ही वह किताब खरीद लाया था और पाँच छः साल के होते ही उसे मुहल्ले के एक स्कूल में भर्ती करा दिया।

जगबहादुर के जन्म के बाद से ही रामलोचन बहुत धार्मिक स्वभाव का हो गया था। साधु-सन्त को देखते ही वह उनकी बहुत सेवा करता। अधिक सेवा देख कर पार्वती जब खर्च की बात उठाती थी तो वह कहता, यह सब जगबहादुर के लिये—उसकी आयु के लिये कर रहा हूँ। सैकड़ों दवा की बोतल से जो काम नहीं होता, सन्त साधु के पैर की चुटकी भर धूलि पाते ही उसका दसगुना अधिक काम होता है। जगबहादुर की उम्र नौ-दस साल की होते ही रामलोचन ने उसका नाम अँगरेजी स्कूल में लिखा दिया।

इसी समय एकाएक रामलोचन अद्भुत भाव से बदल गया। कई दिन तक रामलोचन बहुत अनमना रहा। किसी से भी बातें नहीं करता, बच्चे को प्यार नहीं करता, पार्वती के साथ बच्चे के भविष्य के विषय में कोई सलाह नहीं करता। पार्वती रामलोचन के इस एकाएक परिवर्तन का कोई कारण ढूँढ़ नहीं पाई, पूछने पर भी कोई उत्तर नहीं दिया।

स्त्री का मन ठहरा—पहले पार्वती को सन्देह हुआ कि पति का र और कहीं तो नहीं लग गया है। यद्यपि इस आयु मे साधारणत. सा नहीं होता—फिर है तो पुरुष ही, क्या विश्वास ? पर पार्वती ने लक्ष्य कर उसका कोई चिह्न नहीं देख पाया। काम से फुर्सत मिलते ही वह घर लौट आता था और किसी बिना जरूरी काम के वह बाहर नहीं जाता था। रात को ड्यूटी पडने पर बाहर रहता, नहीं तो अपनी उस छोटी सी कोठरी मे बैठ कर रामायण लेकर अपने दु.खित से चेहरे से सिर हिला हिलाकर पढा करता। रामलोचन की भूख तक चली गई। पार्वती को शका हुई कि तब क्या साधु हो जायगा—साधु-सन्तों की ओर उसकी भक्ति देख कर। पर रामलोचन साधु नहीं हुआ और न होने का कोई चिह्न ही दिखाई दिया। पार्वती निश्चिन्त हुई, पर उसे प्रतिकार का रास्ता नहीं मिला। यह भाव लक्ष्य करने के कुछ दिन के बाद ही रामलोचन ने मलीन चेहरे से एक दिन कहा कि वह औरंगाबाद के लिये बदली कर दिया गया है। परसों ही जाना पडेगा। पार्वती ने कहा कि सामान बाँध-बूँध लूँ। परन्तु राम-लोचन ने अद्भुत बात सुनाई, वहाँ वह अकेला ही जायगा। शहर में उसने एक कमरा किराये पर लिया है। वहाँ पार्वती जगबहादुर को लेकर रहेगी, क्योंकि औरङ्गाबाद मे यहाँ की तरह बडा स्कूल नहीं है—छोटा स्कूल है, अँगरेजी मे उसे मिडिल स्कूल कहते हैं—यानी छोटा स्कूल।

बात इतनी ही सच है कि उस समय औरङ्गाबाद मे मिडिल स्कूल ही था। पर जगबहादुर अनायास ही मिडिल स्कूल मे पढ सकता था। पार्वती यह सब नहीं समझी। फिर भी वह बोली कि कोई बड़ा स्कूल न रहे, फिर भी वह जायगी। उसी स्कूल में जितना ज्ञान हो—उतना ही अच्छा है। उसका लड़का तो हकीम नहीं होगा। इस बात से रामलोचन को बहुत दुख हुआ। जिस पुत्र को वह बड़ी

में वह दो-चार बार ही गया मे जाकर एक दो दिन ठहरा था। वह
जब तक वहाँ रहता था तब तक मानो वह कुछ डरा हुआ रहता
था। पार्वती की आखों मे उसका यह भाव छिपा नहीं रहा, पर
यह डर किस लिये है, वह यह नहीं समझ सकती थी। कभी वह
सोचती कि शायद पति ने कोई अन्याय का काम कर डाला है। उसके
लिये वह शायद आशंकित रहते हैं। अगर कभी वह पकडे गये?
और कभी वह सोचती कि किसी कारण से पति का दिमाग बिगड गया
है। कई बार उसने पूछा है कि क्यों वे इस तरह हो गये हैं। क्या
उनसे कोई अपराध हो पडा है? अगर हो गया हो, तो क्या वह
क्षमा नहीं किया जा सकता? और अगर क्षमा न हो सके तो क्या
सजा देने पर सब मिट सकता है? यह सब कहते-कहते वह रो पड़ती।
रामलोचन यह सब सुन कर बहुत कातर हो जाता। पर वह अपने
अस्वाभाविक आचरण की बात कहने की इच्छा करके भी कुछ
कह नहीं सकता था। जैसे कोई एक बोझ उसके चित्त पर पत्थर की
तरह बैठा है, जिसे उठा कर फेकना शायद असम्भव है।

जिस पुत्र के जन्म के समय उसको इतना आनन्द था, जिसके
पढने की उमर होने के बहुत पहले ही पुस्तकें समट करने जाकर
लोगों के उपहास का शिकार बना था, वह पुत्र अब कितनी ही पुस्तकें
खतम करके एण्ट्रेंस मे पढ रहा है, फिर भी उस पर पति का पहले
जैसा स्नेह नहीं लौट आया, यह सोच कर पार्वती चुपचाप आँसू
बहाती और अपनी किस्मत को दोष देती। अगर तकदीर खोटी न
होती, तो पति इस तरह बदल न जाता। पर उसका क्या दोष है—पुत्र
ने क्या ऐसा अपराध किया है, यह वह सोच नहीं पाती। पुत्र के मुँह
की ओर देखने में मानो उसे लज्जा होती, अगर वह भी सोच ले कि
उसकी माता के किसी दोष से उसके पिता इस तरह बदल गये हैं।
कभी-कभी वह सोचती कि वह पुत्र के साथ पति के पास चली जाय।

उसका सब रहते हुये भी वह क्यों ऐसी वंचित रहे ? पर फिर सोच-विचार कर वह अपनी कल्पना को कार्य में परिणत नहीं कर पाती थी।

जगबहादुर से कुछ न कहने पर भी वह यह समझता था कि उन तीनों में कहीं कुछ हो गया है। माँ और बाप दोनों को ही वह अच्छी तरह जानता था, कोई अपनी खुशी से किसी पर कुछ खराब व्यवहार नहीं करते हैं, वह यह समझता था। पर फिर भी कहीं कुछ हो गया है इसमें उसे सन्देह नहीं था।

एण्ट्रेन्स की परीक्षा आई। अच्छी तरह परीक्षा देकर उसने लिख भेजा कि अब तो उसकी परीक्षा खतम हो गई है, अब और वहाँ कोई काम नहीं है, अगर उनकी आज्ञा हो तो वह माता को लेकर औरंगाबाद आवे।

लौटती डाक से जवाब आया, वह ऐसा कार्य न करे। औरंगाबाद में इस समय प्लेग फैला है—यह समय बीत जाय, फिर वह मौका देखकर स्वयं जाकर सबको लावेगा आदि।

पार्वती ने भी आशा की थी कि जब योग्य पुत्र ने लिखा है तो अब मना नहीं होगा। जब देखा कि इससे भी कोई फल नहीं हुआ तो पार्वती को बहुत दुःख हुआ। जगबहादुर के हृदय में भी चोट पहुँची।

यथा समय गजट में जगबहादुर के पास होने की खबर छपी। जगबहादुर ने मन ही मन एक निश्चय किया। उसने माता को भी कुछ नहीं बताई।

(३)

वैशाख का महीना था। बहुत गरमी पड़ रही थी। दोपहर भर लू चली थी। सन्ध्या के बाद भी लग रहा था, मानो जमीन के नीचे से

गरम साँस निकल रही हो। सारी भूमि मानो अन्धकार ओढ़ कर दारुण गरमी में स्तब्ध है। रामलोचन अकेला चुपचाप बन्दूक हाथ में लिये खजाने के सामने चहल-कदमी कर रहा था।

रात के दस बजे थे। रामलोचन को सहसा लगा कि बगल की ओर मानो किसीके पैर की आहट हुई। बन्दूक उठा कर वह सतर्क हो गया। हाँ, पैर की आहट ही तो है! वह चिल्लाया—"हुकुमदार!" यानी Who comes there (कौन आता है !)

कोई जवाब नहीं मिला। दूसरी बार उसने कड़े स्वर से पुकारा—"हुकुमदार!"

अँधेरे में वह मूर्त्ति खड़ी हो गई, पर कोई उत्तर नहीं मिला।

तीसरी बार उसने पुकारा—"हुकुमदार!" और उत्तर न आने पर उसने सामने की मूर्त्ति को लक्ष्य करके गोली छोड़ दी। मूर्त्ति मानो ठीक उसी क्षण घुटने टेक कर बैठने जा रही थी। तब बन्दूक से गोली छूट गई थी।

बन्दूक की गोली छूटते ही एक भारी चीज के गिरने का शब्द हुआ।

लालटेन लेकर रामलोचन दौड़ा हुआ गया। जो देखा, उससे उसकी आँखें पथरा गईं। उसने यह क्या किया है! डाकू सोच कर उसने किसे मार डाला है! यह तो उसी का 'एकलौता' पुत्र जगबहादुर है!

बन्दूक फेंक कर, एक आर्त्तनाद करके वह मृतक पुत्र की छाती पर गिर पड़ा।

सरकार से उसे कर्त्तव्य पूर्ण करने के लिये पुरस्कार की घोषणा हुई।

उसने अफसरों के पैरों पड़ कर इस्तीफा मंजूर कराया। पुत्र के रक्त में हाथ कलंकित करके उस हाथ से क्या अब बन्दूक पकड़ी जायगी?

नौकरी छोड़ कर वह नीची दृष्टि किये अपराधी की तरह पार्वती के सामने आकर खड़ा हुआ। रोते-रोते उसने उससे सब बातें कहीं। यह भी कहा कि इतनी कोशिश करके भी वह तकदीर की बात से अपने को बचा नहीं सका। एक साधु ने कहा था कि उसका पुत्र उसके हाथ से ही मरेगा। इस आशंका से वह इतने दिनों तक कष्ट सहन करके पुत्र और पत्नी को दूर रख कर स्वयं अकेला इतनी दूर पड़ा था; कहीं वह नासमझ कुछ कर न बैठे।

पर अदृष्ट की रेखा क्या इससे मिट सकती थी?

झगड़ा

एक धूपवाले सुबह में, पी० ऐंड ओ० कम्पनी का एक जहाज़ ... एडेन से—अरब सागर के वक्ष पर—बम्बई की ओर आ रहा था। जहाज़ इंगलैण्ड से चला था और आज ही इस लम्बी यात्रा का आखिरी दिन था—कल सुबह दस बजे बम्बई पहुँचेगा।

जहाज के पहले दर्जे के डेक पर, रेलिङ्ग पर झुककर दो हिन्दुस्तानी युवक बाहर अनन्त जल की ओर देख रहे थे। वे दोनों अँगरेजी पोशाक पहने हुये थे। जो उनमें उम्र में बड़ा था उसका चेहरा गोरा था; इंगलैण्ड में रहने के कारण गालों पर गुलाबी रंग आ गया था। उसके ओंठ पतले थे। वह जब बातें नहीं करता था तब उसके चेहरे पर एक दृढ़ता टपकती थी। दूसरा युवक कुछ साँवले रंग का था। उसके चेहरे पर दृष्टि डालते ही दो बादामी रंग की आँखें दृष्टि आकर्षित करती थीं, जिसमें कुछ आलसीपन—कुछ मादकता थी। उसका चेहरा कोमल-सा—प्रथम यौवन की चमक से भरा हुआ मालूम होता था।

दोनों एकान्त में बातें कर रहे थे। उन दोनों के अँगरेज़ी ज़बान बोलने के ढंग से साफ पता चलता था कि पहला युवक पंजाबी है और दूसरा बंगाली। बंगाली युवक बड़े जोश के साथ एक अँगरेजी कविता सुना रहा था। उसका भावार्थ यह था—

> पूर्व पूर्व ही सदा रहेगा,
>
> पश्चिम पश्चिम ही होगा।
>
> दोनों का मिल जाना, बोलो,
>
> कैसे यह सम्भव होगा?

जब तक भूतल और गगन का,
नष्ट न हो जावे व्यवधान।
न्याय-दिवस में, जब इस जगती का
हो चुके पूर्ण अवसान।

पंजाबी युवक मुस्कराकर बोला—"क्या आप इस बात पर विश्वास करते हैं, मिस्टर दास?"

दास ने गम्भीरता के साथ कहा "विश्वास नहीं करता! इसी विश्वास की नींव पर मेरे दो साल बीत गये हैं, मिस्टर सिंह!"

सिंह लंदन से इञ्जीनियरिंग पास करके आ रहा था। इसीलिये उसने नींव शब्द का मौलिक अर्थ लगा लिया और विस्मय के साथ बोला "नींव? आप क्या कहना चाहते हैं कि आप पूरब के आदमी हैं यह बात इंगलैण्ड का समाज भूल गया है? मेरा अनुभव कुछ और ही है।"

दास बोला—' मगर मैं यह कभी नहीं भूल सका कि मैं पूरब का
—मैं भूल नहीं सका, जब तक मैं पोशाक में, चालचलन में, चिन्ता
र रखना में पूरब का रहूँगा तब तक पश्चिम के साथ मेरा मिलन
नहीं हो सकता। मैं वहां के समाज में घनिष्ठता के साथ अगर मेल-
जोल रख सका, तो उसका कारण यह था कि मैंने शरीर, मन और
बातचीत में बिलकुल पश्चिम का होने की कोशिश की थी।"

दास यह बात हृदय से कह रहा था मगर सिंह ने निहायत हलके
भाव से कहा—"तब तो आपको बहुत ज्यादा मेहनत करनी पड़ी होगी!
यह सब नहीं कर सका। "टेबिल मैनर्स" में मैं नये से नये आदमियों
से हार जाता था। वह सब सीखने में क्या फायदा—दो दिन के बाद
स्वदेश लौटना ही है?"

दास ने पहले से और ज्यादा गम्भीर होकर कहा—"मिस्टर सिंह,
मैं स्वदेश लौट रहा हूँ, मगर मेरा मन इंग्लैंड में पड़ा हुआ है! मेरे
पिताजी अगर रुपये भेजना बन्द न करते या वहां बैरिस्टरी में आमदनी
होने की आशा रहती, तो मैं कभी भी वहां से नहीं लौटता।"

सिंह ने हँसकर कहा—"इंग्लैंड ने आप पर जादू कर दिया!"
फिर अपनी तीक्ष्ण आँखें सिकोड़ कर बोले—"मगर क्या सिर्फ इंग्लैंड
ही—या मिस इंग्लैंड!"

बातों का विषय मजाक पर आ गया है, यह देखकर दास जरा
दुखित-सा नजर आया। सिंह के सवाल पर वह सिर्फ मुस्कराया।

उसे चुपचाप देख कर सिंह कहने लगे—"मिस्टर दास, पूरब और
पश्चिम में मेल नहीं होगा—यह तो आपने उस कविता की उन पंक्तियों
में कहा, मगर उसके बाद जो कुछ है, वह तो आपने नहीं कहा?" कह
कर दूसरे पद की एक-आध लाइन टूटे-फूटे शब्दों में कहने लगे।

तब दास ने उसके बाद की पंक्तियाँ सुनाईं—

किन्तु कहाँ है पूर्व और फिर,
पश्चिम भी है कहो कहाँ!
कहाँ जाति का बन्धन,
सीमा देश-प्रान्त की भला कहाँ!
जहाँ शक्ति-सम्पन्न पुरुष दो
खड़े हुए हों भूल विभेद।
कहीं रहे हों, कहीं चले,
उनमें कितना ही हो विच्छेद॥

मि० ने कहा—"यह तो बहुत सीधी बात है—सभी इसे मान लेंगे। मगर इसमें भी बचा एक शब्द है, जो कवि के सामने नहीं आया था।"

दास ने पूछा—"क्या है वह?"

मि० दास की कविता को कुछ बदलकर कहने लगा—

किन्तु कहाँ है पूर्व और फिर,
पश्चिम भी है कहो कहाँ!
कहाँ जाति का बन्धन,
सीमा देश-प्रान्त की भला कहाँ!
जहाँ खड़ा हो युवक साथ में
नवयुवती के, भूल विभेद॥
कहीं रहे हों, कहीं चले, उनमें
कितना ही हो विच्छेद॥

दास ने कहा—"यह सिर्फ आपकी राय है या आपने अनुभव से कहते हैं?"

[illegible] बोले—"मिस्टर दास, आप हैं [illegible]। आप [illegible], जिन्होंने [illegible] आदर्श [illegible] है, मगर मैं [illegible] हूँ—बिना अनुभव के कुछ भी नहीं कहता।"

दास आश्चर्य मे होकर सिंह की ओर ताक कर बोले—"तब आपके अन्दर भी रोमान्स है ! मगर यह सुनाना पड़ेगा, मिस्टर सिंह, हालाँ कि अब बहुत कम समय रह गया है।"

सिंह हाथ-घड़ी देखकर कुछ आनन्द के साथ बोले—"और चौबीस घण्टे के बाद हम लोग हिन्दुस्तान पहुँच जायँगे।" फिर गुनगुना कर गाने लगे—

'मेरा सोने का हिन्दुस्तान'

गाते-गाते विह्वल होकर पूर्व दिशा की ओर ताकने लगे।

फिर सिंह पहले की बात भूल कर कहने लगा—"मिस्टर दास, उर्दू कैसी मीठी जबान है। उसके सामने अँगरेज़ी या फ्रेंच नहीं ठहर सकती। क्यों ? आपकी बँगला जबान कैसी है, यह मुझे मालूम नहीं।"

दास ने कहा—"अपनी भाषा को सभी मीठी समझते हैं। मगर मैं अगर अपनी बात कहूँ, तो मैं यह कह सकता हूँ कि अँगरेज़ी से मेरा बेहद प्रेम हो गया है और अँगरेज़ी भाषा को मैं अपनी भाषा समझने लगा हूँ।"

सिंह ने हँसते हुये कहा—"बहुत ठीक होता अगर आप एक अँगरेज़ पत्नी भी साथ मे लाते। आपकी इस सुन्दर अँगरेज़ी जबान की और कौन तारीफ करेगा ? आप क्या समझ रहे हैं कि हिन्दुस्तान के अँगरेज़ आपसे मेल-जोल करने आवेंगे ? हमारे लाहौर मे तो नहीं आते—कलकत्ते की बात नहीं कह सकते।"

दास धीरे-धीरे कहने लगे—"देखिये, हिन्दुस्तान की सीमा ही मेरे जीवन की सीमा नहीं है, और हिन्दुस्तान मे जो अँगरेज़ रहते हैं वे ही केवल अँगरेज़ नहीं हैं। चाहे जिस तरह हो, मेरे जीवन की धारा कुछ ज्यादा फैलकर बहने लगी है।"

सिंह उल्लासित होकर बोले—"तब आप एक इन्टरनेशनलिस्ट हैं—विश्व प्रेमी ?"

दास ने कहा —"यह कहने पर बहुत कुछ कहना पड़ता है। असल बात है, पूरब के साथ मेरी कोई भी आन्तरिक सहानुभूति नहीं है। मैं हिन्दुस्तान लौट रहा हूँ, मगर वहाँ मुझे परदेशी की तरह रहना पड़ेगा। हिन्दुस्तान कभी भी मेरे हृदय को सुखी नहीं कर सकेगा। हाँ, सुखी कर सकता था अगर हिन्दुस्तान में Turkey की तरह काया पलट हो जाती।"

(२)

शाम का चाय पीने के बाद दोनों डेक पर, कुरसी पर बैठ कर सिगरेट पीते पीते बात करने लगे। पहले दर्जे में हिन्दुस्तानियों की—खास करके युवकों की भीड़ भी थी नहीं, इसलिये इन लोगों के देर तक बातों में कोई रुकावट नहीं होती थी।

दास कह रहा था —"मिस्टर सिंह, यहाँ की स्त्रियों के सम्बन्ध में आपका अनुभव क्या है, कहिये।"

दास ने जरा शर्माकर मुँह नीचा कर लिया। सिंह ने उत्साह देते हुए कहा—"तब मिस इंग्लैण्ड ने ही आपको इस तरह से आकर्षित कर रखा है?"

दास कहने लगे—"आपने ठीक ही कहा है मिस्टर सिंह! आपका मिस इंग्लैण्ड शब्द ठीक तौर से इस विषय पर प्रकाश डालता है।... मिस्टर सिंह! एक प्रेम-मूर्त्ति अँगरेज युवती के ही कारण सारा इंग्लैण्ड मेरी आँखों में स्वर्ग से भी सुन्दर है। उससे मैं प्रेम करता हूँ इसीलिये इंग्लैण्ड से भी मेरा प्रेम है।"

सिंह खुश होकर बोले—"बड़े दुःख की बात है कि अब तक जहाज पर इस तरह का रोमान्स सुनने से वञ्चित रहा। ..शुरू किस तरह हुई? यह जरूर Love at first sight—(पहली दृष्टि में प्रेम) हुआ होगा, I came, I saw, I conqucied (आया, देखा और जीत लिया न?) मगर पहले कह दीजिये, साहब यह दुःखान्त तो नहीं है? तब मैं नहीं सुनना चाहता। ट्रैजेडी मैं बिलकुल पसन्द नहीं करता।"

सिंह के सवाल पर सवाल होने पर दास जरा घबरा गया था। फिर वह मुस्कराते हुये बोला—"नहीं. ट्रैजेडी तो नहीं है। मैं बड़ी आशा के साथ इंग्लैण्ड से लौट रहा हूँ।"

सिंह ने कहा—"तब ठीक है। अब कहना शुरू कीजिये।" उस प्रेम-कहानी को कहाँ से शुरू करे. यह दास कुछ क्षणों तक निश्चित नहीं कर पाया।

सिंह ने उसकी हालत देखकर पूछा—"पहले कहिये, वह इंगलिश थी या स्कॉच या वेल्स या आइरिश?"

दास ने हँसकर कहा—"खास इंग्लैण्ड की।"

सिंह बोला—"खास अँगरेज! अच्छा, वह लंदन की रहनेवाली थी या गाँव की?"

दास ने कहा —"यह कहने पर बहुत कुछ कहना पड़ता है। असल बात है, यूरप के साथ मेरी कोई भी आन्तरिक सहानुभूति नहीं है। मैं हिंदुस्तान लौट रहा हूँ, मगर वहाँ मुझे परदेशी की तरह रहना पड़ेगा। हिंदुस्तान कभी भी मेरे हृदय को सुखी नहीं कर सकेगा। हाँ, सुखी कर सकता था अगर हिन्दुस्तान में Turkey की तरह काया पलट हो जाती।"

(२)

शाम का चाय पीने के बाद दोनों डेक पर, कुरसी पर बैठ कर सिगरेट पीते पीते बातें करने लगे। पहले दर्जे में हिन्दुस्तानियों की—खास करके युवकों की भीड़ भी थी नहीं, इसलिये इन लोगों के बैठ कर बातें करने में कोई रुकावट नहीं होती थी।

दास ने कहा था 'मिस्टर सिंह, यहां की स्त्रियों के सम्बन्ध में आपका अनुभव क्या है, कहिये।'

अच्छा ! दोनों ने एक साथ पार किया था ? जूता खोलना पड़ा था ?"

"मैंने जूता खोला था । मगर उसे पानी—"

सिंह बोला—"उसका नाम न कहिये । इस कहानी के लिये कोई एक दूसरा नाम रख लीजिये ।"

दास कुछ सोचकर बोले—"अच्छा . मैंने उसका नाम साईकि (Psyche) रख लिया ।"

"मिस्टर दास, आप तो पहले दर्जे के कवि मालूम हो रहे हैं ! हाँ, तो कहिये ।"

"साईकि कितनी मेहनत से सज कर गई थी—उसके लिये जूता खोलना एक दु:ख-दायक बात थी—"

"जरूर . जरूर । इससे आपकी Chivalry भी प्रमाणित हो गई ।"

"हाँ, मैं उसे उठाकर झरना पार करने लगा । साईकि बोली—ऐसा सुन्दर दृश्य केवल विस्मृति मे लीन होकर रहेगा, यही दु:ख की बात है ।"

"मैंने मतलब नहीं समझा ।"

"मेरे पास एक कैमरा था, मगर फोटो खींचने के लिये कोई आदमी नहीं था । हम लोग कुछ आगे बढ़ने पर एक लड़के को पा गये । वह मैदान में कागज के टुकड़े उठा रहा था । उसे बुलाकर फोटो खींचने की तरकीब बता दी । फिर हम लोग पानी के ऊपर गये और लड़के को इशारा करते ही उसने फोटो ले लिया । मगर एक प्लेट पर विश्वास नहीं कर सके, इसलिये फिर एक बार फोटो खिंचवाया । साईकि को लेकर मुझे चार बार आना-जाना पड़ा ।"

"दो बार तो आपने फोटो खिचवाया—चार बार किस लिये ?"

"लंदन की।"

"अब कहते जाइये।"

दास ने आवेग के साथ कहा "उसे हिन्दुस्तान से बहुत प्रेम है।"

दास कल्पना के राज्य में घूम रहा था। वह धीरे-धीरे कहता गया —"मिस्टर सिंह, एक दावत में उससे मेरा परिचय हो गया था।"

सिंह बोला "फिर?"

"उस दिन थोड़ी देर तक बातचीत हुई थी। फिर एक दिन हम दोनों मोटर-बस पर शहर घूमने गये। और एक दिन ट्यूब ट्रेन (जमीन के अन्दर चलनेवाली रेल) में हम लोगों ने एक साथ सफर किया था।" कह कर दास बहुत धीरे से बोला "फिर एक दिन उससे साउथ केनसिंग्टन बाग में साक्षात हुआ।"

"यह सब by appointment (पहले से तय करके) हुआ था?"

अच्छा ! दोनों ने एक साथ पार किया था ? जूता खोलना पड़ा था ?'

मैंने जूता खोला था । मगर उसे पानी—"

लिए बोला—"उसका नाम न कहिये । इस कहानी के लिये कोई दूसरा नाम रख लीजिये ।"

दास कुछ सोचकर बोले—"अच्छा. .मैंने उसका नाम साइंकि (Psyche) रख लिया ।'

'मिस्टर दास, आप तो पहले दर्जे के कवि मालूम हो रहे हैं ! [...]ता कहिये ।"

'साइंकि कितनी मेहनत से सज कर गई थी—उसके लिये जूता खोलना एक दुःखदायक बात थी—"

जरूर.. जरूर ! इससे आपकी Chivalry भी प्रमाणित हो[...] गई ।'

"हाँ, मैं उसे उठाकर झरना पार करने लगा । साइंकि बोली—ऐ[...] सुन्दर दृश्य केवल विस्मृति में लीन होकर रहेगा, यही दुःख की [...] है !"

"मैंने मतलब नहीं समझा ।"

"मेरे पास एक कैमरा था, मगर फोटो खींचने के लिये कोई [...] नहीं था । हम लोग कुछ आगे बढ़ने पर एक लड़के को पा ग[...] मैदान से कागज़ के टुकड़े उठा रहा था । उसे बुलाकर फोटो[...] की तरकीब बता दी । फिर हम लोग पानी के ऊपर गये [...] को इशारा करते ही उसने फोटो ले लिया । मगर एक प्लेट [...] नहीं कर सके, इसलिये फिर एक बार फोटो खिंचवाया लेकर मुझे चार बार आना-जाना पड़ा ।"

"दो बार तो आपने फोटो खिंचवाया—चार बार [...]

"लंदन को।"

"अब कहते जाइये।"

दास ने आवेग के साथ कहा—"उसे हिन्दुस्तान से बहुत प्रेम है।"

दास कल्पना के राज्य में घूम रहा था। वह धीरे-धीरे कहता गया—"मिस्टर मिट्, एक दावत में उससे मेरा परिचय हो गया था।"

मिट बोला—"फिर?"

"उस दिन थोड़ी देर तक बातचीत हुई थी। फिर एक दिन हम दोनों मोटर-बस पर शहर घूमने गये। और एक दिन ट्यूब ट्रेन (जमीन के अन्दर चलनेवाली रेल) में हम लोगों ने एक साथ सफर किया। फिर" कह कर दास बहुत धीरे से बोला—"फिर एक दिन उसके साथ केनसिंगटन बाग में साक्षात हुआ।"

"यह जरूर by appointment (पहले से तय करके) हुआ था?"

"हाँ।"

अच्छा ! दोनों ने एक साथ पार किया था ? जूता खोलना पड़ा
"

मैंने जूता खोला था । मगर उसे यानी—"

फिर बोला—"उसका नाम न कहिये । इस कहानी के लिये कोई
दूसरा नाम रख लीजिये ।"

दास कुछ सोचकर बोले—"अच्छा...मैंने उसका नाम साईकि
(Psyche) रख लिया ।"

'मिस्टर दास, आप तो पहले दर्जे के कवि मालूम हो रहे हैं !
तो कहिये ।"

'साईकि कितनी मेहनत से सज कर गई थी—उसके लिये जूता
खोलना एक दुःख-दायक बात थी—"

जरूर...जरूर । इससे आपकी Chivalry भी प्रमाणित हो
गई ।"

"हाँ, मैं उसे उठाकर झरना पार करने लगा । साईकि बोली—ऐसा
सुन्दर दृश्य केवल विस्मृति मे लीन होकर रहेगा, यही दुःख की बात
है !"

"मैंने मतलब नहीं समझा ।"

"मेरे पास एक कैमरा था, मगर फोटो खींचने के लिये कोई आदमी
नहीं था । हम लोग कुछ आगे बढ़ने पर एक लड़के को पा गये । वह
मैदान मे कागज़ के टुकड़े उठा रहा था । उसे बुलाकर फोटो खींचने
की तरकीब बता दी । फिर हम लोग पानी के ऊपर गये और लड़के
को इशारा करते ही उसने फोटो ले लिया । मगर एक प्लेट पर विश्वास
नहीं कर सके, इसलिये फिर एक बार फोटो खिंचवाया । साईकि को
लेकर मुझे चार बार आना-जाना पड़ा ।"

"दो बार तो आपने फोटो खिचवाया—चार बार किस लिये

"पहले तो यों ही जाकर लौट आये। फिर दो चार फोटो खिंचवाए। फिर कैमरा लाने के लिये गये।"

"कैमरा तो आप अकेले ला सकते थे?"

"मार्जरि ने कहा कि वह अपने हाथ से कैमरा लायगी। लड़का छ पेनी पाकर बहुत खुश हो गया था।"

"फिर?"

"फिर हरी घास से ढँके हुए एक टीले पर जाकर हम लोग बैठे। हम दोनों ने कितनी ही बातें कीं। उसी समय पहली बार मैंने अपने प्रेम की बात उससे कह दी।"

"वह अवश्य ही सुनकर प्रसन्न हुई होगी?"

"हाँ। उसने कहा - माँ-बाप से पूछना पड़ेगा। वह बिलकुल बच्ची थी — सिर्फ अठारह साल की थी।"

फिर हँस पड़ा। फिर बोला — "तब आप लोगों ने शादी क्यों नहीं की? या फिर शादी कर चुके हैं?"

"हृदय में तो हो गई है। इस जगत में उसके सिवाय और किसी स्त्री से मैं प्रेम नहीं कर सकूँगा। और यह मैं जानता हूँ, वह भी मेरे सिवा और किसी पुरुष को अपने हृदय में स्थान नहीं देगी।"

फिर हिल हँस पड़ा। फिर बोला - "आप बड़े भावुक हैं, मिस्टर [illegible]!"

"जी हाँ! इसीलिये तो मैं आपसे कह रहा था कि मेरी इंग्लैंड की यादें सिर्फ उस सुन्दरी युवती के कारण हैं। आज एमा (Ema)—I am sorry—माईकि इंग्लैण्ड है और इंग्लैण्ड माईकि है।"

"एमा!" कहकर सिंह ने आँखें ऊपर उठाईं।

दास ने मुस्कुराकर कहा—"मैंने गलत कहा—माईकि! माईकि!!"

रात को भोजन के पश्चात दास ने सूटकेस खोलकर कई फोटो निकाले और उनमें से एक चुन लिया। वह वही तस्वीर थी जिसमें वह झरने के पानी के बीच में खड़ा था और गोद में एक अँगरेज युवती थी। दोनों के चेहरे पर आनन्द का आवेग था।

उस रात को दास को अच्छी तरह से नींद नहीं आई। मन में तरह-तरह की स्मृतियाँ आने-जाने लगीं।

दूसरे दिन चाय पीने के पश्चात् दास उस तस्वीर को लेकर सिंह को ढूँढने निकला। सिंह और दो हिन्दुस्तानियों के साथ, दूरबीन के द्वारा हिन्दुस्तान के किनारे का पता लगाने में लगा हुआ था। दास को देखकर, सिंह उसके हाथ में दूरबीन देकर बड़े उत्साह के साथ बोला—"देखिये...देखिये...हिन्दुस्तान दीख रहा है।" स्वदेश के पास आकर सिंह आनन्द से अधीर हो गया था!

थोड़ी देर बाद दोनों मित्र एकान्त में पास-पास कुरसियों पर बैठे। सिंह की आँखों पर दूरबीन थी और एक ओर से दूसरी ओर देख रहा था।

सिंह ने कहा—"स्वदेश में...अपने घर पर जाने में कितना आनन्द है!"

दास कोई उत्साह न दिखा कर बोला—"हाँ...है तो! मगर उस आनन्द के अन्दर Sentimentalism है!"

"आप तो दो साल से घर से बाहर हैं, इसीलिये आपको ज्यादा —— नहीं मिल रहा होगा—मगर मुझे तो पाँच साल हो गये।"

"जी हाँ। इसीलिये तो मैं आपसे कह रहा था कि मेरी इंग्लैंड की स्मृति सिर्फ उस सुन्दरी युवती के कारण है। आज एमा (Ema) —I am sorry—साईकि इंग्लैण्ड है और इंग्लैण्ड साईकि है।"

"एमा !" कहकर सिंह ने आँखें ऊपर उठाईं।

दास ने मुस्कुराकर कहा—"मैंने गलत कहा—साईकि ! साईकि !!"

रात को भोजन के पश्चात् दास ने सूटकेस खोलकर कई फोटो निकाले और उनमें से एक चुन लिया। वह वही तस्वीर थी जिसमें वह झरने के पानी के बीच में खड़ा था और गोद में एक अँगरेज युवती थी। दोनों के चेहरे पर आनन्द का आवेग था।

उस रात को दास को अच्छी तरह से नींद नहीं आई। मन में तरह-तरह की स्मृतियाँ आने-जाने लगी।

दूसरे दिन चाय पीने के पश्चात् दास उस तस्वीर को लेकर सिंह को ढूँढने निकला। सिंह और दो हिन्दुस्तानियों के साथ, दूरबीन के द्वारा हिन्दुस्तान के किनारे का पता लगाने में लगा हुआ था। दास को देखकर, सिंह उसके हाथ में दूरबीन देकर बड़े उत्साह के साथ बोला—"देखिये...देखिये.. हिन्दुस्तान दीख रहा है।" स्वदेश के पास आकर सिंह आनन्द से अधीर हो गया था।

थोड़ी देर बाद दोनों मित्र एकान्त में पास-पास कुरसियों पर बैठे। सिंह की आँखों पर दूरबीन थी और एक ओर से दूसरी ओर देख रहा था।

सिंह ने कहा—"स्वदेश में ..अपने घर पर जाने में कितना आनन्द है !"

दास कोई उत्साह न दिखा कर बोला—"हाँ...है तो ! मगर उस आनन्द के अन्दर Sentimentalism है।"

"आप तो दो साल से घर से बाहर हैं, इसीलिये आपको ज्यादा आनन्द नहीं मिल रहा होगा—मगर मुझे तो पांच साल हो गये।"

दास ने आवेग के साथ कहा—"मिस्टर सिंह, क्या सचमुच यह न्दरी नहीं है ? ..सच कहिये।"

"जी हाँ, इसमें क्या शक है।" कहकर सिंह आँखों पर दूरबीन लगाकर देखने लगा।

दास बोला—"मिस्टर सिंह, अब आपको अपनी प्रेम-कहानी कहनी पड़ेगी। अब समय नहीं है—थोड़ी देर में बम्बई पहुँच जायँगे।"

सिंह ने कहा—"बैठिये, मैं अभी आ रहा हूँ।" कहकर वह अपने केबिन में चला गया और दस मिनट के पश्चात् आकर दास के सामने एक फोटो रखकर बोला—"यही मेरी साईकि है।"

दास ने मुस्कुराहट के साथ उस तस्वीर को अपने हाथ में लिया। उसने देखा, यह भी उसीकी तस्वीर की तरह एक युवती को गोद में लिये हुए एक झरने के पानी के बीच में खड़ा था। उसे सहसा यह ख्याल हुआ कि यह उसीकी तस्वीर की एक दूसरी प्रतिलिपि तो नहीं है ! सिंह ने बड़ी चाल चली ! मगर सहसा उसकी दोनों आलसी आँखें विस्मय से भर गईं। उसने देखा, जो युवक, युवती को गोद में लेकर खड़ा है वह है सिंह; मगर वह मुस्कान भरी युवती एमा की तरह है—अरे। वही मुँह, आँखें, शक्ल !

दास चकित होकर बोला—"यह तो एमा की तस्वीर है !"

सिंह ने आँखें घुमाकर, भौंहें तानकर कहा—"एमा आपकी 'साईकि' थी, मेरी भी 'साईकि' रही। सभी उसे देखकर उससे प्रेम करना चाहते हैं।"

दास विस्मय के साथ बोला—"यानी आप कहना चाहते हैं कि आप भी उसे गोदी में लेकर झरना पार कर रहे थे ?"

सिंह ने कहा—"तस्वीर में देख लीजिये"

"आप क्या कह रहे हैं—मिस्टर सिंह ?"

दास बोला—"आपके कई experience में से यह एक है ?"

सिंह मुस्कराने लगा।

दास ने जरा रूखे स्वर में कहा—"मिस्टर सिंह, आपने दो व्यक्तियों के जीवन को कितनी हानि पहुँचाई है, इसका अनुमान लगा सकते हैं ?"

सिंह जरा दुःखित होकर बोला—"आप अट-सट बकने लगे हैं मिस्टर दास—you're talking nonsense !" कहकर उसने उसके हाथ से अपनी तस्वीर ले ली।

दास कहने लगा—"मिस्टर सिंह, आप अगर अपना विषैला हृदय लेकर उसके जीवन के सामने न आते, तो वह देवी से भी बढ़कर होती। आपने एमा और मुझ पर क्या अन्याय किया है, समझ सकते हैं ?"

सिंह का मुँह लाल हो रहा था। मगर आखिरी शब्द सुनकर वह हँस पड़ा और कहा—"अन्याय मेरा या आपका ? यह देखिये, मेरी तस्वीर की तारीख आपकी तारीख से आठ महीने पहले की है। मैं कह सकता हूँ कि आपने मेरी प्रेमिका को बरबाद किया है।"

सिंह के हाथ से तस्वीर लेकर दास तारीख देखने लगा। सिंह हँसते हुये बोला—"देखिये, मेरी तस्वीर में वह कुछ कम उम्र की दीखती है, कुछ नमक ज्यादा है। अच्छी तरह से देखिये।"

दास फिर अपनी जेब से तस्वीर निकाल कर मिलाने लगा।

सिंह कहने लगा—"देखिये...सभी मुल्कों में एक तरह की औरतें हैं जो परदेशियों से प्रेम रखती हैं। मगर आप उन्हें पहिचान नहीं सके !"

दास सिंह की तस्वीर 'डेक' पर फेंक कर खड़ा हो गया और बोला—Mr singh, don't add insult to injury ! (मिस्टर सिंह, आपने अन्याय तो किया है, तिस पर बेइज्जत न कीजिये) आप

याद रखिये कि दुनिया में सभी आपकी तरह cynic (मानव विद्वेषी) नहीं हैं—आपकी तरह selfish (स्वार्थी) नहीं हैं !"

सिंह भी खड़े होकर बोले—"अट-संट न कहिये, मिस्टर दास ! धैर्य की भी एक सीमा है ।"

दास ने कहा— "आप बहुत पहले ही उस सीमा को पार कर चुके हैं ।

क्षण भर के लिये दोनों एक-दूसरे की ओर जागती भरी दृष्टि से देख रहे थे । फिर वे अपने अपने कैबिन में चले गये ।

कुछ ही समय के बाद जहाज बम्बई शहर के सामने आ गया ।

बैलार्ड पियर में उतर कर टैक्सी पर चढ़ने के समय सिंह ने देखा, कुछ दूर पर, दास भी एक टैक्सी पर चढ़ रहा था । दोनों की आंखें चार हुईं, मगर उनमें कितना द्वेष भरा था !

उस दिन शाम को ट्रेन पर दोनों हिन्दुस्तान के दो प्रान्तों में चले गये, मगर दोनों के हृदयों में यह अंकित रहा कि हजार माइल की दूरी पर एक-दूसरे का दुश्मन है ।

कामना

मेरी इस डायरी के प्रति पृष्ठ मे नई-नई बाते हैं। मेरे न रहने पर
ह किसके हाथों में पहुँचेगी, यह मुझे पता नहीं। मगर कोई भी इसे
ढना आरम्भ करे पूरा पढ जाना होगा। पाप ऐसी ही आकर्षक
चीज़ है।

कल की उस घटना ने मेरी विचार धारा में क्रान्ति मचा दी है।
मगर इस क्रान्ति से क्या मैं बहुत खुश हूँ? मैं यह नहीं कह सकती।
किन्तु इस पथ पर आने के बाद अकसर एक ग्लानि मेरे मन पर छाई
रहती थी, शायद वह ग्लानि अब मुझे स्पर्श नही कर पायेगी। कल
रात को एक गहरी समस्या समाधान हो गई है।

पुरानी आदत मैं बिलकुल नहीं छोड सकी थी, इसीलिये अपने
कार्य का नुकसान करके बगीचे में सैर करने के लिये गई। उस समय
सन्ध्या हो चुकी थी। जाडे का मौसम होने के कारण विक्टोरिया गार्डन
में भीड नहीं थी। मैं बीस मिनट तक बगीचे की सैर करके जब कुछ
थक गई तो एक निराले स्थान में एक खाली बेंच पर बैठ गई। मेरे
मन में एक पुरानी बात उदय हो रही थी। कुछ दिन पहले भाग
चन्द इसी बेंच पर बैठकर मुझे कितनी ही प्रेम की बातें सुना रहा
था। पुरुषों के चगुल में फँसकर कितने सुख के स्वर्ग की मैंने रचना
की थी। सोचते-सोचते मैं बिलकुल तल्लीन हो गई। मुझे पता नहीं.
मैं कब तक ऐसी बेहोशी मे रही। एकाएक बेंच हिली। मैंने देखा, एक
वृद्ध मेरे पास बेंच पर आकर बैठ गया है। धुन्धले प्रकाश में यह पता
चलना कठिन था कि उसकी उम्र क्या होगी ..मगर साठ से ऊपर ह

याद रखिये कि दुनिया में सभी आपकी तरह cynic (मानव विद्वेषी) नहीं हैं—आपकी तरह selfish (स्वार्थी) नहीं हैं !"

स्मिथ भी खड़े होकर बोले —"अट सट न कहिये, मिस्टर दास ! धैर्य की भी एक सीमा है !"

दास ने कहा- "आप बहुत पहले ही उस सीमा को पार कर चुके हैं।

क्षण भर के लिये दोनों एक दूसरे की ओर ताकते रहे। दृष्टि में द्वेष भरा था। फिर वे अपने अपने केबिन में चले गये।

कुछ ही समय के बाद जहाज बम्बई शहर के सामने आ गया।

बैलार्ड पियर से उतर कर टैक्सी पर चढ़ने के समय स्मिथ ने देखा, कुछ दूर पर, दास भी एक टैक्सी पर चढ़ रहा था। दोनों की आंखें चार हुईं, मगर उनमें कितना द्वेष भरा था !

उस दिन शाम को ट्रेन पर दोनों हिन्दुस्तान के दो प्रान्तों में चले गये, मगर दोनों के हृदयों में यह अंकित रहा कि हजार मील की दूरी पर एक-दूसरे का दुश्मन है।

कामना

मेरी इस डायरी के प्रति पृष्ठ मे नई-नई बाते हैं। मेरे न रहने पर यह किसके हाथों में पहुँचेगी, यह मुझे पता नहीं। मगर कोई भी इसे पढना आरम्भ करे पूरा पढ जाना होगा। पाप ऐसी ही आकर्षक चीज़ है।

कल की उस घटना ने मेरी विचार धारा में क्रान्ति मचा दी है। मगर इस क्रान्ति से क्या मैं बहुत खुश हूँ ? मैं यह नहीं कह सकती। किन्तु इस पथ पर आने के बाद अकसर एक ग्लानि मेरे मन पर छाई रहती थी, शायद वह ग्लानि अब मुझे स्पर्श नहीं कर पायेगी। कल रात को एक गहरी समस्या समाधान हो गई है।

पुरानी आदत मैं बिलकुल नहीं छोड सकी थी, इसीलिये अपने कार्य का नुकसान करके बगीचे में सैर करने के लिये गई। उस समय सन्ध्या हो चुकी थी। जाडे का मौसम होने के कारण विक्टोरिया गार्डन में भीड नहीं थी। मैं बीस मिनट तक बगीचे की सैर करके जब कुछ थक गई तो एक निराले स्थान मे एक खाली बेंच पर बैठ गई। मेरे मन मे एक पुरानी बात उदय हो रही थी। कुछ दिन पहले भाग चन्द इसी बेंच पर बैठकर मुझे कितनी ही प्रेम की बातें सुना रहा था। पुरुषों के चगुल मे फँसकर कितने सुख के स्वर्ग की मैंने रचना की थी ! सोचते-सोचते मैं बिलकुल तल्लीन हो गई। मुझे पता नहीं, मैं कब तक ऐसी बेहोशी में रही। एकाएक बेंच हिली। मैंने देखा, एक बृद्ध मेरे पास बेंच पर आकर बैठ गया है। धुन्धले प्रकाश में यह पता चलना कठिन था कि उसकी उम्र क्या होगी ..मगर साठ से ऊपर ही

थी। मैं तो नित्य देख रही हूँ कि, जो जवान हैं, वे अपनी आँखों से नारी की देह को निगल जाना चाहते हैं, मगर इस साठ साल के बुड्ढे की आँखों में—जिसे यमराज ले जाने के लिये आ रहा था, ऐसी तृष्णा देखकर मैं स्तम्भित हो गई! इस आदमी के जीवन की सीमा खतम हो चुकी थी फिर भी शौक का अन्त नहीं हुआ था। उसके माथे के लम्बे बाल बड़ी हिफाजत से कंघी किये हुये थे, आँखों पर सोने का बना हुआ ऐनक, रूमाल पर सेण्ट था, पतली धोती, और उमदा सिल्क का कोट पहिने हुये था। सूरत और शकल में शौकीनी दीख पड़ रही थी मगर आँखों का रंग दूसरा ही था। मैं तो एक चरित्रहीन औरत हूँ फिर भी मुझे उस पर बड़ी घृणा हुई। मैं उठ पड़ी।

ट्रेन पर जब सवार हुई तो उस बुड्ढे के लिये मुझे दुःख होने लगा। उद्यान में पेड़ों के सूखे पत्ते देखकर मुझे ऐसा ही दुःख होता था। सूखा पत्ता वही है जिसका काम समाप्त हो गया है और दो दिन के बाद ज़मीन पर गिरकर धूल में विलीन हो जायगा, और उसके स्थान पर नये नये, छोटे छोटे, हरे-हरे पत्ते निकल आवेंगे—वे भी थोड़े दिन के बाद बुड्ढे होने के लिये।

बूढ़े ने क्षण भर के लिये इधर-उधर दृष्टि डालकर कहा—"और
र रात भर के लिये तुम्हारे कमरे में ठहरूँ, तो क्या लोगी ?"

मैंने कहा—"पचास रुपये।"

वह मेरे पीछे-पीछे मेरे कमरे में आया और पूछा—"तुम खाना खा
की ?"

मुझे हँसी आ गई। मैंने कहा—"अभी तो दस-पन्द्रह मिनट हुये
लौटी हूँ—आपको तो मालूम ही है।"

बूढ़े ने ज़रा घबराते हुये कहा—"मैं कुछ देर के लिये बाहर जाना
हता हूँ—"

मैंने उसके मुँह की ओर ताक कर कहा—"क्यों ?"

उसने मेरी आँखों में क्या देखा यह मैं नहीं जानती। झट एक
रुपये का नोट निकाल कर मेरे हाथ में ठूँस कर, उसने मुझसे कहा—
तो मैं अभी आ रहा ।"

लगभग आध घण्टे के बाद वृद्ध लौट आया। उसके हाथों में
रुपयों की मिठाई वगैरह थी।

मैंने कहा—"यह क्यों लाये ?"

बूढ़े ने मुस्कराते हुये कहा—"आज की रात के लिये मैंने तुम्हें
रीद लिया है। जो कुछ मैं तुमसे कहूँ—बड़ी मेहरबानी होगी, अगर
मान लो। अच्छा तो, पहले खा लो।"

मैं अस्वीकार कैसे कर सकती थी ? मैंने उनके हाथों से पिटारियों
लेकर उन्हें कुरसी पर बैठने के लिये कहा। वह बैठकर मेरी
र ताकने लगा। उस दृष्टि में सिर्फ हृदय की तृष्णा भरी हुई थी।
ने पूछा—"आप क्या देख रहे हैं ?"

उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया और उसी तरह मेरी ओर देखने
गा। मैंने कहा—"आपको जब जल्दी नहीं है, तो मैं उस कमरे में
के लिये जा रही हूँ।"

मैंने मुस्कराकर कहा—"नाराज क्यों होने लगी। कहिये न, क्या है ?"

बूढे ने आँखों पर से ऐनक उतारकर रूमाल से काँच को साफ करके आँखों पर लगाकर कहा—"आज रात भर के लिये...तुम मेरी हो न ?"

"यह पूछने की क्या ज़रूरत थी ? यह तो पहले ही तय हो चुका !"

"तुमने मेरी बात समझी नहीं। मेरे कहने का मतलब यह है मेरी किसी ख्वाहिश को तुम रोकोगी तो नहीं ?"

"अगर आपकी ख्वाहिश अनुचित न होगी तो क्यों रोकूँगी ?—मगर आपको अगर मुझे मार डालने की ख्वाहिश होगी तो जरूर रोकूँगी।

"तुम्हे . तुम्हे मैं सिर्फ प्यार करूँगा !" कहते-कहते वह बूढा मेरे पैर पर गिरा और मेरे दोनों पैरों को अपने हाथों से जकडकर उसने हृदय से लगा लिया और आवेश से चूमने लगा।

मुझे कुछ बेचैनी मालूम होने लगी। मेरे दादा की उम्र के यह वृद्ध हैं और मेरे दोनों पैरों को लेकर .

बूढे से मैं कुछ कहने जा रही थी, किन्तु वह मेरे पैरों पर ऐसी उन्मत्तता के साथ चिपका हुआ था कि मैं कुछ बोल नहीं सकी। मुझे बहुत कौतूहल हो रहा था। पाँच मिनट के बाद जब बूढ़े ने आँखें खोलीं तो मैंने उनसे पूछा—"आपके घर मे कौन-कौन हैं ?"

"सिर्फ रुपया है।"

"... तो मैं जान गई—इसके अलावा !"

सूखे पत्तों की तरह हवा में उड़कर मैं चला जाऊँगा; और सदैव के लिये मिट्टी में विलीन हो जाऊँगा। तब मेरी ही छाती पर कितने गुलाब उत्पन्न होंगे, कितनी चिड़ियाँ गावेंगी और कितनी युवतियाँ अपने कोमल पैरों से स्पर्श करती हुई चली जायँगी। केवल.. केवल मुझे ही चला जाना पड़ेगा—बुलावा आया है।...मुझे क्या अभिलाषा है, जानती हो !"...कहकर बूढ़े ने मेरे मुँह को दोनों हाथों से पकड़ कर मेरी आँखों में घूरते हुये कहा—"क्या अभिलाषा है, जानती हो— ! संसार से चले जाने के पहले एक घूँट में अपनी सारी वासनाएँ तृप्त कर दूँ..."

उसकी वे तृष्णातुर दोनों आँखें आज भी मेरी आखों के सामने घूम रही हैं !

(२५ दिसम्बर सन् १६३६ ई० को बम्बई की एक प्रसिद्ध वेश्या ने शराब के साथ ज़हर पीकर आत्महत्या की थी। उसकी आलमारी में एक डायरी थी। यह कहानी उसी डायरी के कुछ पृष्ठ हैं)

उसी समय छोटेलाल की आँखों के सामने दूर के घर मे कमर र गगरी लिये जल भरने के लिये आने को तैयार प्रिया के शान्त मुख का चित्र नाच उठा। तब उसका चित्त जैसे भीग उठा, प्रभात की उस शीतल वायु में उसका स्वर कम्पित होकर बहने लगा।

उस समय छोटेलाल की दृष्टि थी स्वप्न राज्य मे, नहीं तो जरा सी कोशिश करने पर छोटेलाल देख पाता कि ठीक उसी समय जब इ प्रिया के मुख को सोचकर अनमना हुआ था, पहाड के ऊपर क बड़े पत्थर पर खड़ा एक शेर उसे ध्यान से देखता हुआ कूदने के लिये तैयार हो रहा था।

इसके बाद, छोटेलाल कुएँ से डोल उठा कर उसकी रस्सी खोल रहा था कि इतने में एक भयानक आवाज—'अरे बप्पा रे', एक बड़ी भारी चीज़ का गिरना, और फिर कुएँ के भीतर विकट आवाज, मानो पहाड़ टूट पडा हो—और जल का वेग से आलोडन।

यानी शेर एकाएक कुएँ के बिलकुल किनारे खड़े छोटेलाल पर उतने ऊँचे पर से कूद पडा। छोटेलाल इतने बड़े वेग का भार ठीक तौर लेने के लिये तैयार नहीं था, और इसका नतीजा यह हुआ कि छोटेलाल और शेर दोनों के दोनों एक ही साथ कुएँ के भीतर जा गिरे।

कुएँ में पानी कम नहीं था, इसलिये उसके भीतर शेर और मनुष्य अच्छी तरह डूबते-उतराते रहे। वह एक अपूर्व दृश्य था।

स्वभाव से ही शेर जल को पसन्द नहीं करता—और तिस पर इतने गहरे पानी मे गिरना! कहाँ तो वह इस चलते-फिरते मनुष्य को अब तक पहाड पर ले जाकर चबाना शुरू कर देता, और कहाँ यह आफत आ पडी। छोटेलाल की आँखों के सामने से उसके प्यारे घर

सोचते-सोचते परेशान होने लगे। शेर को लेकर ऐसे संकट का अनुभव किसीका भी नहीं था। अब्दुलरहमान बूढ़ा शिकारी है, जिन्दगी भर रीवाँ दरबार में रह कर उसने कितने ही शेर मारे हैं और बड़ी-बड़ी खतरनाक हालतों में शेर के मुँह से अपने को बचा लिया है, वह ये सब बातें बहुत गर्व के साथ कहा करता था, पर वह सब तो जमीन पर होता था! अगर शेर एक आदमी से आलिङ्गन किये जमीन से चालीस फीट नीचे कुएँ के भीतर कुश्ती लड़ता रहे, तो क्या उपाय करना चाहिये, उसके लिये यह बताना कठिन हो गया। अब्दुलरहमान बार-बार अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुये विचलित होने लगा। इधर देर भी नहीं की जा सकती थी।

बन्दूक काम में नहीं लाई जा सकती। अन्त में अब्दुल रहमान ने कहा—"कुएँ में रस्सी डालो!"

एक डरपोक ने कहा—"अगर छोटेलाल के बदले में शेर रस्सी पकड़ कर चढ़ने लगे तो ?"

इस बात से भीड़ में खलबली मच गई। अगर मामला ऐसा ही हो जाय, तो वह सबके लिये खतरनाक है। भीड़ में से दो-चार आदमी धीरे-धीरे कुएँ से हट कर चुपके से फाटक के बाहर सड़क पर जाकर खड़े हो गये!

अब्दुलरहमान ने झिड़का—"बेवकूफ कहीं के! तो तुझे ही चबायेगा। भाग यहाँ से! फेंको जी—रस्सी फेंको। खड़े-खड़े मुँह क्या ताक रहे हो ?"

कुएँ में रस्सी गिराई गई। कारिन्दा ने कहा—"छोटेलाल, देख, कसकर रस्सी पकड़ ले।"

अब्दुलरहमान ने चिल्ला कर कहा—"कोई डर नहीं मत! तुझे हम बचा लेंगे। छोटेलाल!"

शेर भी ऊपर उठ आया है, तो इस मण्डली की कैसी बुरी दशा होगी, यह सोचकर भीड़ में एक धीमा गुंजन हो गया, और जो लोग फिर कुएँ में रस्सी डालने जा रहे थे, उनके हाथ रुक गये।

सोचने की बात थी। बूढ़ा अब्दुलरहमान अपनी कीचड़ लगी दाढ़ी पर तेज़ी से हाथ फेरने लगा।

शेर शायद ही कभी ऐसे संकट में पड़ा हो!

और मनुष्य-भक्षी शेर के पास और अधिक देर तक छोटेलाल को रखना भी नहीं चाहिये। जाने कब उसके प्रेम के बदले में भूख आ जायगी, यह कोई कह भी नहीं सकता!

अन्त में अब्दुलरहमान ने कहा—"कोशिश तो करना चाहिये—अब खुदा की मर्जी है। कारिन्दा साहब, दो मशालों का इन्तज़ाम तो कीजिये—जल्दी!"

थोड़ी ही देर में मशालें आ गईं।

उस समय अब्दुल रहमान की बुद्धि विकसित हो गई थी। उसने साफ तौर से सारी जन-मण्डली का नेतृत्व लेकर गर्व से कहा—"यह हो नहीं सकता कि इस तरह एक आदमी अब्दुलरहमान की आँखों के सामने मरे। अरे खड़े-खड़े मुँह क्या ताक रहे हो, रस्सी कुएँ में डालो।"

फिर कुएँ में रस्सी फेंकी गई।

अब्दुलरहमान ने कुएँ के भीतर झुक कर कहा—"हे भाई छोटे-लाल, डरो मत। रस्सी कमर में बाँध कर कस कर पकड़े रहो—छोड़ना मत। अगर शेर तुम्हें पकड़े रहे तो भी डरो मत। जरा गम खाओ—फिर हराम के पिल्ले को मज़ा चखाऊँगा। मर्द के बच्चे हिम्मत रक्खो!"

जब छोटेलाल को ऊपर उठाया गया, वह बेहोश था। उसकी देह शेर के नाखूनों से कई जगह कट गई थी। कुएँ के भीतर क्रोधित शेर का गर्जन हो रहा था।

कई आदमी छोटेलाल को होश में लाने की कोशिश में लग गये। अब्दुलरहमान ने एक बार आसमान की ओर देखकर दुनिया के मालिक खुदा को धन्यवाद देकर कहा—"अब लाओ पत्थर।"

लोग कुएँ में पत्थर फेकने लगे। शेर मरता ही नहीं था। आधे घण्टे के बाद शेर की आवाज शान्त हुई। चार-पाँच घण्टे के बाद उसे उठाया गया, तब दीखा कि एक बडा भारी शेर था और उसकी दोनों आँखे झुलस गई थी।

छोटेलाल को मिर्जापुर के जिला अस्पताल में भेज दिया गया—आराम होने में तीन महीने से ज्यादा दिन लगे।

❊ समाप्त ❊

A15—1243